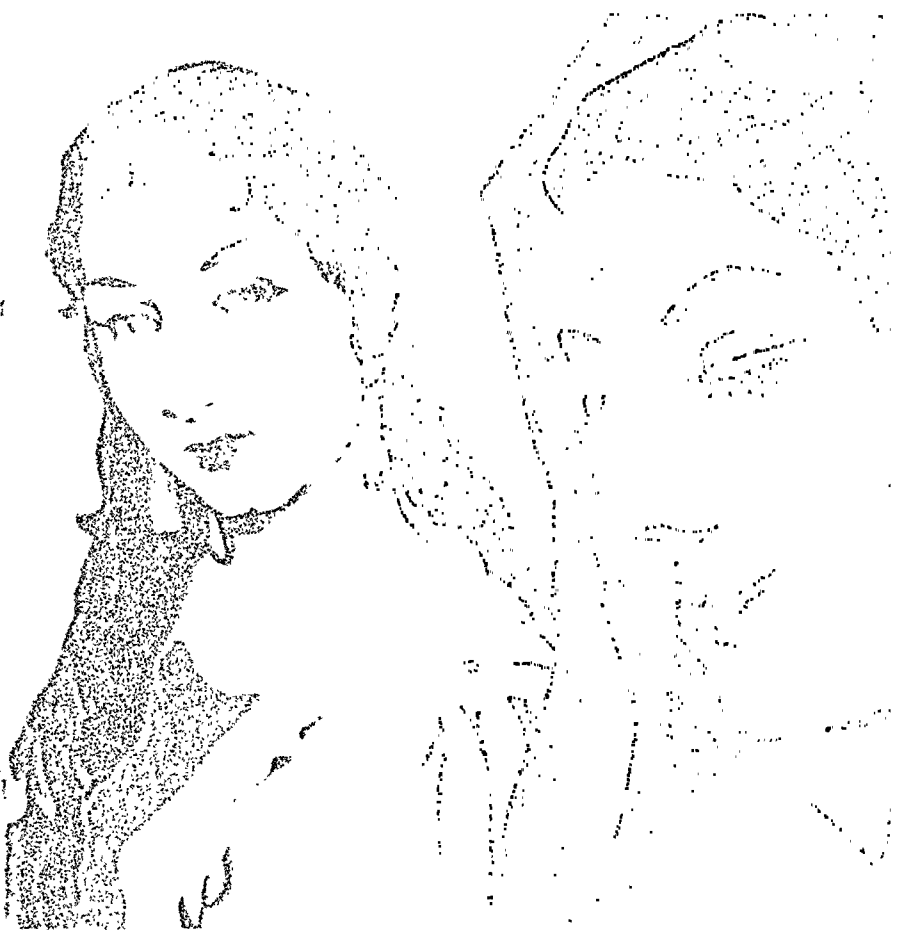




दीदी





“तुम् अच्छी तरह जानती हो
कि मैं तुम्हें प्यार करता हू
और तुम्हारे जीजी—
वे तो देवी हैं
वे संसार की प्राणी नहीं हैं
वे हमसे बहुत ऊपर हैं”



हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
अर्जुनस्य द्रुपदमुनिर्वाक्यं



स्वामीप्रसाद लाल

अनुवादक
श्री रामनाथ

मूल्य : एक रुपया

प्रकाशक : हिन्दू पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली
मुद्रक : बुगान्तर प्रेस, डफरिन पुल, दिल्ली

DO BAHINEN : RAVINDRA NATH TAGORE :

जाए तो उसे ढूँढ़ देने की जिम्मेदारी स्त्री पर है। स्नान के लिए जाते समय शशांक ने अपनी कलाई की घड़ी उतारकर कहां रख दी, इसकी याद उसे नहीं रहती, पर स्त्री की आंख उसपर ज़रूर पड़ जाती है। जब दो पांव में अलग-अलग दो रंग के मोजे पहने वह बाहर जाने के लिए तैयार होता है तो स्त्री आकर उसकी गलती ठीक करती है। बंगला महीने के साथ अंग्रेजी महीने की तारीख मिलाकर जब वह किसी तिथि को मित्रों को निमन्त्रण दे देता है और असमय-अप्रत्याशित अतिथि घर आ टपकते हैं तो अचानक आ पड़ी वह जिम्मेदारी स्त्री को ही उठानी पड़ती है। शशांक अच्छी तरह जानता है कि उसकी दैनिक जीवन-यात्रा में यदि कहीं कोई भूल हुई तो उसकी स्त्री उसे सुधार लेगी, इसलिए कोई न कोई त्रुटि करते रहना उसका स्वभाव बन गया है। स्त्री स्नेहपूर्ण तिरस्कार के स्वर में कहती है, "अब श्रीर मुझसे न होगा। तुम्हें क्या कभी समझ न आएगी?" पर यदि शशांक को सचमुच समझ आ जाती तो शर्मिला के दिन फसलवाली जनहीन भूमि जैसे दुर्वह हो जाते।

आज शशांक किसी मित्र के घर दावत में गया है। रात को ग्यारह बज गए, बारह बज गए; ब्रिज का खेल चल रहा है। एका-एक मित्र हंस उठा, "देखो, तुम्हारा सम्मन लेकर सिपाही आ पहुंचा। तुम्हारी श्रद्धा पूरी हो गई।"

वही चिरपरिचित चाकर महेश आया है। पकी मूँछें, पर सिर के बाल काले, वदन में मिर्जई, कंधे पर रंगीन गमछा, बगल में बांस की लाठी। मालकिन मां ने पता लगाने भिजा है कि क्या वाबू यहां हैं। मांजी को भय है कि रात को अंधेरे में लौटते समय कहीं कोई दुर्घटना न घटे। साथ में एक लालटेन भी भेजी है।

शशांक विरक्त होकर ताश पटक देता है और उठ खड़ा होता है। मित्र कहते हैं, "आह! एक अरक्षित पुरुष प्राणी!" घर, लौटकर शशांक स्त्री से जो बातें करता उनकी न तो भाषा स्निग्ध होती, न उसकी भंगी शान्त होती। शर्मिला चुपचाप उसकी भर्त्सना सह लेती।

तथा करे, उससे रहा नहीं जाता ! वह अपने मन से इस आशंका को कितनी प्रकार निकाल नहीं पाती कि उसकी अनुव्यवृत्ति में सब प्रकार की संभव विपत्तियाँ स्वामी के सल्लो में पर्युत्पन्न किए सड़ी हैं ।

बाहर कोई आदमी आया हुआ है ; सायद कोई काम की बात हो रही है । पर धरा-धरा में अन्तःपुर से छोटी-छोटी चिट्ठें आ रही हैं, "याद है कि कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी । आज जल्द खाना खाने आ जाना ।" वशांत कोथ करता है, फिर द्वार भी मान जाता है । बड़े दुःख के साथ एक बार उसने पत्नी से कहा था, "तुम्हारी दुहाई ही ! चक्रवर्ती-बाड़ी की गृहिणी की तरह तुम भी किसी देवी-देवता की शरण ले लो । तुम्हारा यह मनोयोग, मेरे प्रति उत्तरी चिन्ता मुझ अकेले के लिए बहुत बधाई है । उसका कुछ भाग देवी-देवता को देने से उसका बोक मेरे लिए सहज ही जाएगा । उनके साथ कुछ बधावली भी करोगी तो ये धानति न करेंगे किन्तु मैं दुर्बल ननुष्य हूँ ।"

गर्मिला बोली, "हाय-हाय, एक बार काकाजी के साथ मैं हरिद्वार गई तो थी, याद है तुम्हारी क्या हालत हुई थी !"

अब क्या कितनी शोचनीय हो गई थी, इसे अलङ्कृत भाषा में कुछ वशांत ने एक दिन स्त्री को सुनाया था । जानता था कि उस अलङ्कृत से जहाँ एक ओर गर्मिला दुःखी होगी तहाँ उसे आनन्द भी होगा । अब वह फौन मुँह लेकर आज अपने ही उस समित्त भाषण का उपवन करे ! चुपचाप मान ही लेना पड़ा हो गयी बात नहीं । दूसरे दिन सुबह जब उस सखी का कुछ आभास हुआ तो गर्मिला की कल्पना के अनुसार उसे धन धन कुर्सेन खानी पथी और तुलसीरस का रसमिनी हुई साथ भी पथी पड़ी । विरोध करने का मुँह ही नहीं रहा तथा वह क्योंकि उसके फाँसे एक बार ऐसी ही हालत में उसने आशक्ति की थी और कुर्सेन खाने से इन्कार कर दिया था जिससे उसे उबर हो गया था और वशांत के इतिहास में यह बात समित्त अक्षरों में लिख ली गई थी ।

पर मैं वशांत के आशय और आशय के लिए गर्मिला समित्त कितनी अज्ञ रहती है, बाहर उसकी सम्मान-रक्षा के लिए भी उसकी

ही सचेष्ट रहती है। एक दृष्टान्त याद आता है।

एक बार वह घूमने-फिरने नैनीताल गया था। रास्ते के लिए पहले ही से स्थान रिजर्व करा लिया था। जंकशन पर गाड़ी बदलकर वह कुछ खाने-पीने के फेर में लग गया। लौटने पर देखा कि बर्दीधारी एक दुर्जन-सा लगनेवाला व्यक्ति उन्हें वेदखल करने की चेष्टा में है। स्टेवान-मास्टर ने आकर एक विश्व-विश्रुत जनरल का नाम लेकर कहा, "डब्बा उन्हींका है, भूल से दूसरा नाम लग गया है।" शशांक आखें फाड़कर और सम्मान प्रदर्शित करते हुए अन्यत्र जाने का प्रवन्ध करने लगा। इसी बीच शर्मिला गाड़ी के दरवाजे के सामने आकर बोली, "मैं देखती हूँ कि कौन हमें उतारता है ! बुला लाओ अपने जनरल को !" शशांक सरकारी कर्मचारी था और ऊपरवाले अधिकारियों के जाति-गोत्रवालों तक से बचकर चलने का अभ्यस्त था। उसने चिन्तित होकर कहा, "यह क्या कर रही हो ; और भी तो डब्बे हैं।" पर शर्मिला ने उसकी बात पर ध्यान ही न दिया। अन्त में जनरल साहब रिफ्लेक्शंस रूम से खाना खाकर चुबट पीते हुए आए पर दूर से ही क्रुद्ध स्त्री-भूति देखकर हट गए। शशांक ने पत्नी से पूछा "जानती हो, कितना बड़ा आदमी था ?" पत्नी ने कहा, "जानने की ज़रूरत नहीं। जो डब्बा हमारा है, उसमें वह तुमसे बड़ा नहीं है।"

शशांक ने सवाल किया, "यदि अपमान करता ?"

शर्मिला ने जवाब दिया, "तुम्हारे रहते क्या करता ?"

शशांक शिवपुर कालेज की शिक्षा समाप्त कर इंजीनियर हुआ है। घर के काम-काज में वह चाहे जितना ढीला हो पर नौकरी के काम में पक्का है। इसका मुख्य कारण यह है कि घर की तरह आफिस में स्त्री-ग्रह नहीं है, वहाँ दूसरा प्रचण्ड ग्रह है जिसे चलती भापा में 'बड़ा [साहब]' के नाम से पुकारा जाता है। जब शशांक डिस्ट्रिक्ट-इंजीनियर के पद पर स्थापना के रूप में कार्य कर रहा था तभी उसकी स्थापना उन्नति उलटी तरफ घूम गई। योग्यता और अनुभव दोनों

में कच्चा होते हुए भी जिस अंग्रेज युवक ने, अभी जिसकी रेत ही भिन्न रही थी, आकर उसका स्थान ले लिया। उसके अचिन्तनीय आविर्भाव में था सबसे ऊँचे अधिकारी के सम्पर्क एवं सिफारिश का बल।

शशांक ने समझ लिया कि नये अधिकारी को ऊपर के आसन पर बिठाकर भी वस्तुतः काम सब उसे ही करना होगा। उच्चाधिकारी ने उसकी पीठ ठोंककर कहा, “देरी सौरी मजूमदार ! यथाशीघ्र तुम्हें उपयुक्त स्थान दिया जाएगा।”

आश्वासन और सांत्वना पाने पर भी यह बात मजूमदार को कड़वी लगी। घर लौटने पर छोटी-छोटी बातों को लेकर उसने किट-किट शुरू कर दी। एकाएक नज़र पड़ी कि बैठक के एक कोने में जाला लगा हुआ है। सहसा लगा कि चौकी पर पडा हरे रंग का टक्कन आंखों में चुभ रहा है। बाहर के बरामदे में भाङ्ग लग रही थी, धूल उड़कर आने के कारण नौकर पर बिगड़ पड़ा। कुछ न कुछ धूल तो रोज ही उड़ती है पर उसका इस प्रकार बिगड़ना बिलकुल नया है।

अपने असम्मान की खबर उसने अपनी पत्नी को नहीं दी। सोचा, यदि उसके कान में बात पड़ेगी तो नौकरी के जाल में एक गांठ और पड़ जाएगी; हो सकता है कि वह जाकर अधिकारियों से श्रमधुर भापा में झगड़ ही बैठे। विशेषतः उस डोनाल्डसन पर तो वह बड़ी नाराज़ है। एक बार जब वह सकिट-हाउस के बगीचे में बंदरों का उत्पात शान्त करने गया था तो उसकी बन्दूक के छरों से शशांक के सोला हैट में छेद हो गया था। कोई दुर्घटना नहीं हुई परन्तु हो तो सकती थी। लोग कहते हैं, दोष शशांक का ही था। यह सुनकर डोनाल्डसन पर उसकी नाराज़ी और बढ़ गई। नाराज़ी का सबसे बड़ा कारण तो यह था कि जो गोली बन्दर को लक्ष्य करके छोड़ी गई थी वह शशांक को लगी—इन दोनों को एक ही बात बताकर (यानी शशांक की भी बन्दरों में गिनती करके) शत्रुपक्ष (डोनाल्डसन) हंस पड़ा था।

शशांक के पद-लाघव का समाचार उसकी पत्नी ने

लिया । स्वामी का रंग-ढंग देखकर ही उसने समझ लिया था कि उनकी दुनिया में कहीं कोई कांटा उठ खड़ा हुआ है और उन्हें चुभ रहा है । फिर कारण जानने में देर नहीं लगी । वैधानिक आन्दोलन के रास्ते तो वह गई नहीं, गई संकल्प (सेल्फ-डिटर्मिनेशन) की तरफ । स्वामी से कहा, “अब और नहीं । अभी काम छोड़ दो ।”

इस्तीफा देने पर शशांक के कलेजे में लगी हुई जोंक खुद गिर जाती किन्तु उसकी ध्यान-दृष्टि के सामने था निश्चित मासिक आय का अन्न-क्षेत्र और पश्चिम दिगन्त में उभरी पेंशन की स्वर्णिम रेखा ।

शशांकमौलि जिस वर्ष एम० एस-सी० की डिग्री के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा उसी साल उसके श्वसुर ने शुभकर्म में विलम्ब न करके शर्मिला से उसका विवाह कर दिया । घनी ससुर की सहायता से उसने इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की । उसके बाद नौकरी में भी तेजी के साथ उन्नति के लक्षण देख राजाराम बाबू दामाद की भावी सफलता के क्रम-विकास का निर्णय कर आश्वस्त हो गए । उनकी कन्या ने भी आज तक कभी अनुभव नहीं किया कि कोई अवस्थान्तर हुआ है । घर-गृहस्थी में कोई अभाव नहीं आया, इतना ही नहीं, बाप के घर की चाल-चलन भी यहां ज्यों की त्यों रही । कारण यह था कि इस पारिवारिक राज्य की समस्त व्यवस्था शर्मिला के ही अधिकार में थी । कोई संतान नहीं हुई और जान पड़ता है होने की आशा भी छूट गई है । स्वामी की समस्त आय उसीके हाथ में आती है । कोई विशेष प्रयोजन उपस्थित होने पर घर की अन्नपूर्णा के आगे हाथ पसारने के सिवा शशांक के लिए और उपाय नहीं है । असंगत होने पर मांग अस्वीकृत हो जाती और उसे तिर भुकाकर पत्नी का निर्णय मानना पड़ता । उसकी निराशा किसी दूसरी प्रकार मवुर रस से पूर्ण हो जाती ।

शशांक बोला, “नौकरी छोड़ देना मेरे लिए तो कुछ नहीं है परन्तु तुम्हारे बारे में सोचता हूँ, तुम्हें ही कष्ट होगा ।”

शर्मिला बोली, “उससे भी अधिक कष्ट तब होगा जब अन्याय

को निगलते वकत वह गले में अटक जाएगा ।”

शशांक ने कहा, “काम तो करना ही चाहिए ; गोद का छोड़ कर बाहर कहां-कहां ढूंढता फिरूंगा ?”

“उस ओर तुम्हारी दृष्टि नहीं पड़ती । तुम विनोद में जिसे अपनी नौकरी का ‘ब्लूचिस्तान’ कहते हो वह ‘बिलूचिस्तान’ की मरु-भूमि के उस पार है । उसके बाहर जो विश्व-ब्रह्मांड है उसकी तो तुम कोई गिनती ही नहीं करते ।”

“सर्वनाश ! विश्व-ब्रह्मांड के विस्तार का क्या ठिकाना ! उसकी राह-घाट का ‘सर्वे’ कौन करेगा ? उतनी बड़ी दूरबीन किस बाजार में मिलेगी ?”

“बहुत बड़ी दूरबीन तुम्हें खोजनी नहीं पड़ेगी । हमारे मथुरा दादा कलकत्ता के एक बड़े ठेकेदार हैं । उनके साथ साभेदारी का काम करने से अपने दिन बीत जाएंगे ।”

“साभेदारी वजन में असमान ही रहेगी । अपना पल्ला हलका रहेगा । सामर्थ्य से बाहर साभेदारी करने से इज्जत न रहेगी ।”

“अपनी ओर कमी किस बात की है ? तुम जानते हो कि मेरे नाम से बाबूजी ने जो धन बैंक में जमा करा दिया था, वह सूद के कारण बढ़ रहा है । भागीदार के सामने तुम्हें नीचा न देखना पड़ेगा ।”

“यह कैसे हो सकता है ! वह धन तो तुम्हारा है ।” कहते हुए शशांक उठ खड़ा हुआ । बाहर लोग बैठे हुए थे ।

शर्मिला ने स्वामी का पल्ला पकड़कर उन्हें बैठा लिया ; बोली, “मैं भी तो तुम्हारी हूँ ।”

फिर बोली, “अपनी जेब से फाउण्टेनपेन निकालो, यह लो चिट्ठी का कागज़, लिखो इस्तीफे का पत्र । बिना उसे ढाक में डाले मुझे शांति न मिलेगी ।”

“जान पड़ता है, मुझे भी शान्ति नहीं मिलेगी ।”

लिख दिया इस्तीफा ।

दूसरे दिन शर्मिला कलकत्ता चल दी। मथुरा दादा के घर ठहरी। उलाहना देते हुए कहा, “वहिन की खबर तो कभी लेते ही नहीं !” कोई प्रतिद्वंद्वी स्त्री होती तो उत्तर देती, “तुम भी तो नहीं लेती !” पुरुष के दिमाग में यह उत्तर आया ही नहीं। अपराध मान लिया। बोले, “सांस लेने को भी समय नहीं मिलता। मैं खुद हूँ कि नहीं, यह भी भूल जाता हूँ। फिर तुम लोग भी तो दूर-दूर रहते हो !”

शर्मिला बोली, “अखवार में देखा था कि मयूरगंज या मथुरा-गंज कहीं पुल बन रहा है और वह काम तुम्हें मिला है। पढ़कर बड़ी खुशी हुई थी। तभी मन में आया कि जाकर मथुरा दादा को कॉन्-ट्रेक्टुलेट कर आऊँ।”

“ज़रा सब्र करो, वहिन। अभी समय नहीं आया।”

वात यह थी कि उस काम में नकद रुपया लगाने की आवश्यकता थी। एक मारवाड़ी सेठ के साथ भागीदारी की बात थी। वाद में मालूम हुआ कि उसकी जो शर्तें थीं उसमें मलाई सब उसके हाथ पड़ेगी और इनके भाग्य में केवल कुछ खुर्चन रह जाएगी। इसीलिए जान बचाने की सोच रहे हैं।

शर्मिला ने भुंभलाकर कहा, “ऐसा कभी नहीं हो सकता। अगर साझेदारी ही करनी है तो हम लोगों के साथ करो। ऐसा काम तुम्हारे हाथ आकर निकल जाए तो बुरा होगा। अपने रहते मैं ऐसा होने नहीं दूंगी, तुम चाहे जो करो।”

इसके बाद लिखा-पढ़ी होने में देर नहीं लगी; मथुरा दादा का हृदय भी विगलित हो गया।

काम तेज़ी से चलने लगा। इसके पहले नौकरी की जिम्मेदारी लेकर शशांक ने काम किया है। उस जिम्मेदारी की एक सीमा थी। मालिक बाहर के थे; देने-पावने में सामंजस्य था। अब अपना ही प्रभुत्व अपने को चलाता है। दावा और देय मिलकर एक हो गए हैं। दिन में काम और छुट्टी की निश्चित अवधि नहीं रह गई है। जो जिम्मेदारी उसके मन पर हावी है वह इसलिए और भी कठोर है कि

इच्छा होते ही उसे छोड़ा जा सकता है। और कुछ न हो, स्त्री का ऋण तो उसे चुकाना ही पड़ेगा; उसके बाद कहीं सुस्थ होकर धीरे-धीरे चलने का समय आएगा। बाएं हाथ में रिस्ट-वाच, सिर पर सोला हैट, आस्तीन चढ़ाए हुए, खाकी पैट पर चमड़े की कमर-पेटी, पांव में मोटे सोल के जूते और आंखों पर धूप का रंगीन चश्मा चढ़ाकर शशांक काम में जुट गया। स्त्री का ऋण पूरा होने पर आ गया है फिर भी वह स्टीम कम करना नहीं चाहता; इस समय उसका मन गर्म हो उठा है।

इससे पहले घर-गृहस्थी के आय-व्यय की धारा एक ही नाले से बहती थी; अब उसकी दो शाखाएं हो गईं। एक बैंक की ओर गई; दूसरी घर की ओर। शर्मिला को पहले जितना ही धन मिलता है; वहां किसका क्या देना-पावना है, इससे शशांक को कुछ मतलब नहीं। इसी प्रकार व्यवसाय-सम्बन्धी चमड़े की जिल्दवाला खाता शर्मिला के लिए दुर्गम किले जैसा है। इससे कोई हानि नहीं किन्तु स्वामी के व्यावसायिक जीवन का रास्ता शर्मिला की घर-गृहस्थी के इलाके के बाहर हो जाने के कारण उस ओर से उसके विधि-विधान की उपेक्षा होने लगी। वह विनय करती, “इतनी ज्यादाती मत करो, शरीर टूट जाएगा।” परन्तु कोई फल नहीं होता। आश्चर्य तो यह है कि तबीयत भी नहीं खराब होती। स्वास्थ्य के लिए उद्वेग, विश्राम के अभाव पर आक्षेप, आराम के साथ खाने-पीने, सोने-उठने की ओर ध्यान न देने पर भुंभलाहट इत्यादि दाम्पत्य की सभी उत्कंठाओं की उपेक्षा करके शशांक तड़के ही अपनी सैकंडहैंड फोर्ड गाड़ी लेकर निकल जाता है; दो-डार्ई बजे काम पर से लौटकर आता है और जल्दी-जल्दी कुछ खाकर फिर चला जाता है।

एक दिन उसकी मोटरगाड़ी किसी और गाड़ी से भिड़ गई। खुद तो बच गया पर गाड़ी को काफी क्षति पहुंची। मरम्मत के लिए भेज दी। शर्मिला बहुत चिन्तित हो उठी। रुंघे गले से बोली, “अब तुम स्वयं गाड़ी नहीं हांक सकोगे।”

शशांक हंसी उड़ाते हुए बोला, “पराए हाथ में भी तो खतरा ज्यों का त्यों बना रहता है।”

एक दिन कोई मरम्मत का काम देखने गया तो पैक-वाक्स की कोल जूते को छेदती पांव के तलुए में घुस गई। अस्पताल में जाकर पट्टी बंधवाई, धनुंकार का टीका लगवाया, तब घर आया। उस दिन शर्मिला रूआंसी हो गई। बोली, “अब कुछ दिन चलना-फिरना बन्द रखो, आराम करो।”

शशांक अत्यन्त संक्षेप में बोला, “काम?” इतसे संक्षेप में वह क्या कह सकता था !

शर्मिला बोली, “किन्तु....” इस बार शशांक बिना कुछ कहे, अपनी पट्टी के साथ, काम पर चला गया।

और जोर से कहने का साहस शर्मिला को नहीं होता। अपने क्षेत्र में पुरुष ने अपना जोर दिखा दिया है। युक्ति-तर्क, आर्जू-मिन्नत सबका एक ही उत्तर मिलता है—“काम है।” शर्मिला अकारण चिन्तित होकर बैठ रहती है। देरी होते ही मोटर-दुर्घटना की आशंका होती है। घूप के कारण लाल हो रहे स्वामी के मुख को देखती तो उसके मन में आता कि जरूर इन्फ्लुएंजा हो गया है। डरते-डरते डाक्टर की बात चलाना चाहती पर स्वामी का रुख देखकर वहीं रुक जाती। दिल खोलकर मन की बात कहने की हिम्मत भी उसे आज-कल नहीं होती।

शशांक देखते-देखते घूप में तड़क गए तल्ले की तरह चिड़चड़ा हो गया। तंग कपड़ा, तंग अवकाश, चाल तेज, बात करने में चिनगारी की तरह संक्षिप्त। शर्मिला उसकी द्रुतलय के साथ अपनी सेवा का ताल-सामंजस्य रखने की भरसक चेष्टा करती है। स्टोव के पास खाने की कुछ न कुछ चीज गर्म रखने के लिए रखनी पड़ती है, क्योंकि कोई ठीक नहीं कि कब स्वामी अचानक कह बैठें, “चला, लौटने में देर होगी।” मोटरगाड़ी में भी सोटावाटर की बोतल एवं छोटे टिन के डिब्बे में सूखा खाद्य-द्रव्य तैयार रखना पड़ता है। यू० डी०

कोलोन की एक शीशी भी ऐसी जगह रख देती है जहाँ निगाह पड़ जाए और सिरदर्द होने पर काम आ सके। पर गाड़ी के लौटने पर वह देखती है कि किसी चीज का उपयोग नहीं किया गया है। मन उदास हो जाता है। सोने के कमरे में साफ कपड़े ऐसे स्थान पर रख देती कि निगाह पड़े, फिर भी सप्ताह में चार-चार दिन कपड़े बदलने का अवकाश नहीं मिलता। घर-गृहस्थी की बातें आवश्यक तार की ठोकरमार संक्षिप्त भाषा में होती हैं, वह भी चलते-चलते, पीछे-से पुकारकर—“अरे, एक बात तो सुनते जाओ !” उनके व्यवसाय के साथ शर्मिला का जो थोड़ा-सा सम्बन्ध था, वह भी सूदसहित ऋण के छुक जाने पर समाप्त हो गया। सूद भी दिया है, नाप-जोख करके, हिसाब से और उसकी दस्ती रसीद लिखाकर। शर्मिला ने कहा, “बाप रे बाप, प्रेम में भी पुरुष अपने को पूरी तरह नहीं मिला सकते ! बीच में कुछ व्यवधान रखते हैं जहाँ उनके पौरुष का अभिमान जागता रहता ।”

लाभ के रूपों से शस्त्रांक ने भवानीपुर में एक मन-माफिक मकान बनवाया है। वह उसके शौक की चीज है। स्वास्थ्य और आवास की नई-नई योजनाएं दिमाग आ रही। वह शर्मिला को आश्चर्य में डालना चाहता है। शर्मिला भी विधिवत् आश्चर्य प्रकट करने में कमी नहीं करती। इंजीनियर ने कपड़ा धोने की कल लगाई, शर्मिला ने चारों ओर से देख-भालकर उसकी खूब तारीफ की, पर मन में बोली, ‘कपड़े धुलने के लिए जैसे आज घोवी के घर जाते वैसे ही कल भी जाते रहेंगे। मैले कपड़ों के गर्दभ-वाहन को समझ चुकी हूँ, यह विज्ञान-वाहन समझ में नहीं आता ?’ आलू के छिलके उतारनेवाली मशीन को देख ठक-से रह गई। बोली, “आलूदम तैयार करने की वारह आना दिक्कत दूर हो गई।” परन्तु बाद में सुनाई पड़ा कि फूटी देगची और टूटी केतली के साथ वह भी कहीं फेंकी जाकर निरर्थक हो गई है।

जब मकान तैयार हो गया तब कहीं जाकर उस स्थावर पदार्थ से

शर्मिला के रुद्ध स्नेह-उद्यम की मुक्ति मिली । सुविधा यह थी कि इंट लकड़ी की देह में धैर्य अटल होता है । सामान धरने-सजाने में दो-दो तीकर हांफ उठे; एक तो जवाब देकर चला भी गया । घर की सजावट का काम भी शशांक को दृष्टि में रखकर ही चल रहा है । बँठकखाने में तो वह आजकल बैठता ही नहीं, फिर भी उसकी क्लांट रीढ़ को विश्राम देने के लिए नाना प्रकार के फैशन के 'कुशन' लगाए जा रहे हैं । तिपाइयों और मेजों पर झालरदार फूल-कढ़े आवरण हैं और उनपर एकाध नहीं अनेक फूलदान रखे गए हैं । आज-कल दिन के समय सोने के कमरे में शशांक का आना नहीं होता है ; उसके आधुनिक पंचांग में रविवार भी सोमवार का जुड़वां भाई बन गया है । और छुट्टी के दिनों में भी, जब काम विलकुल बन्द रहता है, तब भी न जाने कहां से वह काम खोज निकालता है और आफिस के कमरे में जाकर नक्शा बनाने का तैल-कागज या खाता-बही लेकर बैठ जाता है । फिर भी पुराने नियम चल रहे हैं । मोटे गद्देदार सोफे के सामने मखमली चप्पल रखी रहती है । उसी तरह पानदान में पान लगाकर रखे जाते हैं । अलगनी पर बारीक रेशम का कुर्ता और चुनी हुई धोती रखी रहती है । आफिस के कमरे में जाकर हस्तक्षेप करने के लिए साहस की जरूरत है फिर भी जब शशांक नहीं होता तो शर्मिला झाड़न हाथ में लेकर उसमें घुस जाती है और रखने तथा न रखने योग्य चीजों के सम्मिलित व्यूह से आवश्यक चीजों को निकालकर उन्हें यथास्थान सजाने से नहीं चूकती ।

शर्मिला सेवा कर रही है परन्तु आजकल उसकी सेवा का बहुत बड़ा भाग अदृश्य ही रह जाता है । पहले उसका आत्मनिवेदन या प्रत्यक्ष के सामने, आज उसका प्रयोग प्रतीक रूप में है—घर-द्वार सजाने में, बाग-बगीचे में, शशांक की कुर्ती के रेशमी आवरण में, तकियों के गिलाफ पर बेलबूटे बनाने में, आफिस के टेबल के एक कोने पर रखे फूलदान में रजनीगंधा के गुच्छे लगाने में ।

अपना अर्घ्य पूजा की वेदी से दूर ही रखना पड़ता है, इसका

उसे बड़ा दुःख है। अभी कुछ दिन पहले ही जो चोट खाई है उसे छिपाकर आंखों के जल से धोना पड़ा है। उस दिन कार्तिक महीने की उनतीसवीं तिथि थी—शशांक का जन्मदिन था। शर्मिला के जीवन का यह सबसे बड़ा पर्व होता है। उसने यथाविधि इष्टमित्रों को निमंत्रित किया था और घर-द्वार विशेष रूप से फूल-पत्तियों से सजाया गया था।

सबरे का काम देखकर जब शशांक घर लौटा तो बोला, “क्या बात है? गुड़े का विवाह है क्या?”

“हाय री किस्मत, आज तुम्हारा जन्मदिन है यह भी भूल गए? चाहे कुछ कहो, आज शाम को तुम बाहर नहीं जा सकोगे।”

“विज्जनेस मृत्यु-दिन के सिवा और किसी दिन के आगे अपना सिर नहीं झुकाता।”

“आगे और कभी नहीं कहेंगी। आज लोगों को निमंत्रित कर चुकी हूँ।”

“देखो शर्मिला, तुम मुझे खिलौना बनाकर दुनिया के लोगों के सामने खेल करने की चेष्टा मत करो।” इतना कहकर शशांक जल्दी से चला गया। शर्मिला शयनकक्ष का द्वार बन्द करके कुछ देर तक रोती रही।

तीसरे पहर लोग आने लगे। ‘विज्जनेस’ का दावा उन लोगों ने सहज ही मान लिया। यदि यह कालिदास का जन्मदिन होता तो ‘शकुन्तला’ का तृतीय अंक लिखने के उज्ज को ये लोग विलकुल बाहियात ठहरा देते। किन्तु विज्जनेस! खूब आमोद-प्रमोद हुआ। नीलू बाबू ने थियेटर की नकल कर सबको खूब हंसाया; शर्मिला भी उस हंसी में शामिल हुई। शशांक-रहित शशांक के जन्मदिन ने आज शशांक-प्रतिष्ठित विज्जनेस के आगे साष्टांग प्रणाम किया।

दुःख बहुत हुआ फिर भी शर्मिला के मन ने दूर से शशांक के इस दौड़ते हुए कार्यरथ की ध्वजा को प्रणाम किया। यह व्यवसाय उसकी पहुंच से बाहर है, वह किसीकी परवाह नहीं करता—न स्त्री

विनती की, न मित्रों के निमंत्रण की, न अपने आराम की ही । अपने काम-काज के प्रति श्रद्धा रखकर ही मनुष्य अपने प्रति श्रद्धा दिखाता है ; यह उसका अपनी शक्ति के आगे अपना निवेदन—समर्पण है । शर्मिला अपनी गृहस्थी की दैनिक कार्यधारा के इस पार खड़ी बड़े आदर से उस पार स्थित शशांक के काम को देखती रहती है । उसकी सत्ता बड़ी व्यापक है, घर की सीमा लांघकर वह दूर देश ली गई है, दूर समुद्र के पार । न जाने कितने परिचित-अपरिचित लोगों को अपने शासनजाल में खींच लाती है । अपने अदृष्ट—भाग्य—के साथ प्रतिदिन पुरुष का युद्ध चल रहा है । उसके यात्रापथ में त्रयों का कोमल-बाहुबंधन यदि बाधक होता है तो उसे निर्मम ग से छिन्न करके आगे जाने के सिवा पुरुष के लिए और क्या उपाय ? इस निर्ममता को शर्मिला ने भक्तिपूर्वक ग्रहण किया । बीच-बीच में उससे रहा नहीं जाता । जहां अधिकार नहीं, वहां भी यह दय अपनी करुण उत्कण्ठा से खींच ले जाता है । इससे चोट लगती पर उस चोट को प्राप्य मानकर वह व्यथित मन से राह छोड़ लौट जाती है । देवता से कहती है, 'तुम देखना, मेरी गतिविधि तो वहां बरूढ़ है ।'

नीरद

जिस समय बैंक में जमा रूपयों पर सवार होकर इस परिवार की समृद्धि छः अंकों की धोर दौड़ी चली जा रही थी उसी समय शर्मिला को किसी दुर्बोध बीमारी ने धर दबाया ; उठने की शक्ति भी नहीं रह गई । उसके बारे में जो दुश्चिन्ता है उसे समझने के लिए कथा को कुछ विस्तार से बताना पड़ेगा ।

शर्मिला के पिता थे राजाराम बाबू । बारीसाल की ओर तथा गंगा के मुहाने के आसपास उनकी बहुत बड़ी जमींदारी थी । इसके अलावा भी शालिमार घाट के जहाजी कारखाने में उनका हिस्सा था ।

उनका जन्म पिछले जमाने के अन्त और इस जमाने के शुरू में हुआ था कुश्ती, शिकार और लाठी चलाने में उस्ताद थे। पखावज बजाने उनका नाम था। 'मर्चेण्ट आफ वेनिस', 'जूलियस सीज़र' तथा 'हैमलेट' में से दो-चार पन्ने मुंहज्वानी सुना सकते थे; मेकाले^१ की अंग्रेज उनका आदर्श थी; वे बर्क^२ की वाग्मिता पर मुग्ध थे; वंगला भाषा के प्रति उनकी श्रद्धा की सीमा 'मेघनाद-वध'^३ काव्य तक ही थी। मधु आयु में शराब और निषिद्ध भोज्य पदार्थों को आधुनिक मानसि उन्नति का आवश्यक अंग मानते थे परन्तु आखिरी उम्र में इन्हें छोड़ दिया था। उनका पहनावा आकर्षक, मुखश्री सुन्दर, गम्भीर, शरीर बलवान तथा मिज़ाज मजलिसी था। शरण ग्रहण करनेवाले किसान प्रार्थी को 'ना' कहना नहीं जानते थे। पूजा-अर्चना में कोई निहा न थी, फिर भी वह उनके घर में समारोहपूर्वक होती थी। समारोह से लौकिक मान-मर्यादा व्यक्त होती थी; पूजा होती थी स्त्रियों तथा दूसरे लोगों के लिए। इच्छा होती तो बड़ी सरलता से 'राजा' का उपाधि प्राप्त कर सकते थे। जब कोई इसके प्रति उदासीनता का कारण पूछता तो हंसकर जवाब देते, "पितृदत्त राजा की उपाधि तो भोग रहे हैं, उसके ऊपर किसी और उपाधि को स्थान देने से उसका सम्मान नष्ट हो जाएगा।" गवर्नमेंट हाउस की खास डचोर्ड में प्रवेश करने का उन्हें अधिकार था। बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी उनके घर की चिरप्रचलित जगद्धात्री पूजा में शामिल होने के लिए आते और पर्याप्त मात्रा में शेम्पेन का प्रसाद उदरस्थ करते थे।

शर्मिला के ब्याह के बाद उनके पत्नीहीन घर में रह गया बड़ा लड़का हेमन्त और छोटी लड़की ऊर्मिमाला। लड़के को उसके अव्यापक-गण दीप्तिमान अर्थात् 'त्रिलियण्ट' बताते थे। उसका मुद्दतों पीछे

१. ये तीनों अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर के नाटक हैं।
२. इंग्लैंड के एक राजनीतिज्ञ तथा लेखक
३. इंग्लैंड की पार्लियामेंट का प्रतिनिधि वक्ता जिसने वारेन हेस्टिंग्स पर शोषण के चार्ज में जोशीली बयान दिये थे।
४. माइकेल मधुसूदन दत्त रचित वंगला महाकाव्य।

फेरकर देखने लायक था। ऐसा कोई विषय नहीं था जिसमें परीक्षा-
 तान के उच्चतम श्रंक उसने न पाए हों। फिर वह व्यायाम में भी बाप
 ही इच्छत बनाए रखेगा, ऐसे लक्षण प्रबल थे। कहना निरर्थक है कि
 उसके चारों ओर उत्कंठित कन्या-मण्डल की प्रदक्षिणा बराबर चल
 रही थी किन्तु अभी तक विवाह की ओर से उसका मन उदासीन ही
 था। इस समय उसका ध्यान था यूरोपीय विश्वविद्यालय से उपाधि
 प्राप्त करने की ओर। मन में यह उद्देश्य रखकर ही उसने फ्रेंच और
 जर्मन भाषाएं सीखनी शुरू कर दी थीं।

और कोई काम हाथ न आने पर, अनावश्यक होते हुए भी हेमंत
 ने कानून पढ़ना शुरू ही किया था कि उसकी आंतों या शरीर के किसी
 अंग में कोई ऐसा विकार पैदा हो गया कि डाक्टरों को उसकी कोई
 सहायता ही नहीं मिली। उस गोपनचारी रोग को उसके सबल शरीर में
 उसी प्रकार आश्रय मिल गया जैसे कोई शत्रु पकड़े जाने के भय से
 किले में छिप जाता है। उसका पता लगाना जितना मुश्किल था
 उसपर आक्रमण करना भी उतना ही कठिन हो गया। उस जमाने
 में एक अंग्रेज डाक्टर के ऊपर राजाराम बाबू की अविचल धारणा
 थी। अस्त्रचिकित्सा (आपरेशन) में उनका काफी नाम था। उन्होंने
 रोगी की परीक्षा शुरू की। अस्त्रव्यवहार की आदत के कारण उन्होंने
 अनुमान लगाया कि देह की दुर्गम गुहा में घीमारी ने जड़ पकड़ ली
 है, उसे निर्मूल करना होगा। अस्त्रकौशल की सहायता से चीरकर
 जिस स्थान को देखा गया वहां न वह कल्पित शत्रु था, न उसके
 अत्याचार का ही कोई चिह्न था। भूल-सुधार का कोई रास्ता ही न
 रहा, लड़का मारा गया। बाप के मन का गहरा दुःख किसी भी प्रकार
 शान्त होना नहीं चाहता। उनका दिल तो टूट ही गया पर एक
 बलिष्ठ, सजीव सुन्दर देह को इस प्रकार चीरने-फाड़ने की स्मृति
 दिन-रात काले हिरन पक्षी की भांति तीक्ष्ण नख और चंगुल से उनके
 हृदय को दबाकर उनका रक्तपान करने और उनको मृत्यु की ओर
 ढकेलने लगी।

हेमन्त का पूर्व-सहपाठी और अभी-अभी पास हुआ डाक्टर नीरद मुकर्जी उसकी तीमारदारी में था। वह बराबर जोर देकर कहता रहा कि भूल ही रही है। उसने हेमन्त के रोग का स्वरूप निर्णय किया था और सलाह दी थी कि किसी सूखी जगह जाकर दीर्घकाल तक वहां रहकर हवा-पानी बदलने से लाभ हो सकता है। किन्तु राजाराम बाबू के मन में उनका पैतृक संस्कार अटल था। वे जानते थे कि यम के साथ दुःसाध्य लड़ाई छिड़ जाने पर उसका उपयुक्त प्रतिद्वन्दी एकमात्र अंग्रेज डाक्टर ही हो सकता है। इस दुर्घटना के अन्तर्गत नीरद पर उनका विश्वास और स्नेह अत्यधिक बढ़ गया। उनकी छोटी कन्या ऊर्मि के मन में भी ऐसी बात आई कि इस आदमी की प्रतिभा असाधारण है। पिता से बोली, “देखो तो बाबा, इस छोटी उम्र में ही उनका अपने पर कैसा दृढ़ विश्वास है। इतने बड़े विलायती डाक्टर के मत के विरुद्ध अपनी बात कहने में कैसी दृढ़ता का परिचय दिया।

बाबा ने कहा, “डाक्टरी विद्या केवल शास्त्रज्ञान नहीं है। किसी-किसीमें उसका दुर्लभ दैवी संस्कार पाया जाता है। नीरद में वही बात देखता हूं।”

F-83/482

इनकी भक्ति शुरू हुई एक छोटे से प्रमाण को लेकर, शोक के आघात से, अनुताप की वेदना में। उसके बाद प्रमाण की परवाह किए बिना ही वह बढ़ती गई।

एक दिन राजाराम ने कन्या से कहा, “देख ऊर्मि! मुझे ऐसा सुनाई पड़ता है मानो हेमन्त मुझे पुकारकर कह रहा हो कि आदमियों के रोग-दुःख को दूर करो। मैंने निश्चय किया है कि उसके नाम पर एक अस्पताल की स्थापना करूंगा।”

ऊर्मि ने अपने स्वाभाविक उत्साह से उच्छ्वासित होकर कहा, “बड़ा अच्छा रहेगा। मुझे यूरोप भेज देना, वहां से डाक्टरी सीखकर मैं लौट आऊंगी और इस अस्पताल का भार स्वयं उठा लूंगी।”

बात राजाराम के हृदय में बैठ गई। बोले, “यह अस्पताल त

होगा देवोत्तर सम्पत्ति का, तू होगी उसकी सेविका। हेमन्त बड़ा दुःख पाकर गया है, तुम्हें वह बहुत प्यार करता था। तेरे इस पुण्य-कार्य से उसे परलोक में शान्ति मिलेगी। उसकी बीमारी में तू ही रात-दिन उसकी सेवा करती रही; वही सेवा तेरे हाथ से बढ़ती जाएगी।” इतने बड़े घर की कन्या डाक्टरों करेगी, यह बात वृद्ध पिता को ज़रा भी नहीं अखरी। रोग के हाथ से आदमी को बचाना कितना बड़ा काम है, इसे वे हृदय से अनुभव कर रहे हैं। उनका लड़का नहीं बचा किन्तु दूसरों के बच्चे बचते रहे तो उससे उनकी क्षतिपूर्ति हो जाएगी और शोक भी कम हो जाएगा। लड़की से बोले, “यहां की यूनिवर्सिटी की विज्ञान की पढ़ाई पूरी कर ले, फिर यूरोप जाना।”

इसी समय से राजाराम के मन में एक और बात घूमने लगी। वह है लड़के नीरद की बात। नीरद सोने का टुकड़ा है। जब देखते हैं चमत्कार-सा लगता है। डाक्टरों पास कर चुका है, परीक्षा के मद्दत को पार कर डाक्टरों विद्या के समुद्र में तैर रहा है। थोड़ी उम्र है फिर भी आमोद-प्रमोद अथवा और किसी बात से उसका मन विचलित नहीं होता। जो कोई आविष्कार होता है भली-भांति उलट-पुट उसकी आलोचना और परीक्षा करता है और अपनी प्रैक्टिस की क्षति की परवाह नहीं करता। जिन डाक्टरों की प्रैक्टिस ज़ोरों से चल रही है उनकी अवज्ञा करता है। कहता है, मूर्ख लोग उन्नति और योग्य व्यक्ति गौरव-लाभ करते हैं। किसी किताब से उसने यह बात ले ली है।

अन्त में एक दिन राजाराम ने ऊर्मि से कहा, “विचार कर देख लिया, हमारे अस्पताल में यदि तू नीरद की संगिनी बनकर काम करेगी तो काम पूरा हो जाएगा और मैं भी निश्चिन्त हो जाऊंगा। उसके जैसा लड़का मुझे और कहां मिलेगा?”

राजाराम चाहे और जो कुछ करें पर हेमन्त की इच्छा को अग्राह्य नहीं कर सकते। हेमन्त कहा करता था कि लड़कियों की पसन्द की उपेक्षा करके माता-पिता की पसन्द का विवाह करना बर्बरता है।

राजाराम ने एक दिन यह तर्क उपस्थित किया था कि विवाह वस्तुतः व्यक्तिगत बात नहीं है, उसके साथ घर-गृहस्थी की बात लगी हुई है इसलिए विवाह केवल इच्छा द्वारा नहीं अनुभव द्वारा सम्पन्न होना चाहिए। तर्क चाहे जैसा करें, अभिरुचि चाहे जैसी हो, किन्तु हेमन्त पर उनका स्नेह इतना गहरा था कि उसीकी इच्छा इस परिवार में चलती थी।

नीरद मुकर्जी का इस घर में आना-जाना है। हेमन्त ने उसका नाम रखा था 'आउल' अर्थात् उल्लू। इसके अर्थ की व्याख्या करने को कहने पर वह कहता, "वह आदमी पौराणिक है—माइथालोजिकल; उसके वयस नहीं है, है केवल विद्या, इसीसे मैं उसे 'मिनर्वा' का वाहन कहता हूँ।"

नीरद इस घर में कभी-कभी चाय पीने आया करता था। तब हेमन्त के साथ उसकी गहरी बहस चलती थी। उसका मन ऊर्मि की ओर जाता था पर व्यवहार में ऐसी कोई बात नहीं थी। कारण, इस क्षेत्र में यथोचित व्यवहार उसके स्वभाव में ही नहीं है। वह आलोचना कर सकता है पर आलाप करना नहीं जानता। यौवन का उत्ताप भले उसके अंदर हो पर उसकी ज्योति उसमें नहीं है। इसलिए प्रकाशमान यौवन वाले युवकों की अवज्ञा करने में उसे सन्तोष होता है। इन्हीं कारणों से किसीने उसे ऊर्मि के उम्मीदवारों में गिनने का साहस नहीं किया। उसकी वह ऊपर दिखनेवाली अनासक्ति ही, वर्तमान कारणों के साथ मिलकर उसके प्रति ऊर्मि की श्रद्धा को सम्मान की सीमा तक खींच लाई थी।

राजाराम ने जब स्पष्ट कह दिया कि यदि लड़की के मनमें वितरहकी दुविधा न हो तो नीरद के साथ उसका विवाह होने से प्रसन्नता होगी, तब लड़की ने भी अनुकूल संकेत करते हुए सिर मृदुलिया। हां, इतना अवश्य बता दिया कि इस देश की और विलास की शिक्षा पूरी करने के बाद ही विवाह हो सकेगा। पिता ने कहा,

ऊपर ले लिया ।

लॉगमाला देखने में जितनी अच्छी है उससे ज्यादा अच्छी दीखती है । उसकी चंचल देह में मन की उज्ज्वलता झलमलाती रहती है । सभी विषयों में उसकी उत्सुकता है । साइन्स में उसका मन जितना लगता है, साहित्य में उससे ज्यादा ही लगता होगा, कम नहीं । मैदान में फुटबाल देखने जाने के लिए उसका असीम आग्रह रहता है और सिनेमा देखने के प्रति भी उसकी अवज्ञा-भावना नहीं हैं । प्रेसीडेंसी कालेज में विलायत से फिजिक्स (भौतिकी) का एक व्याख्याता आया है, उसकी सभा में भी वह उपस्थित दिखाई पड़ती । कान से रेडियो भी सुनती है, कभी कहती है, "छिः !" फिर भी यथेष्ट कौतूहल बना रहता है । रास्ते में गाजे-वाजे के साथ कोई बर विवाह के लिए जा रहा होता है तो वह भट बरामदे में पहुंच जाती है । बार-बार जूलोजीकल पार्क (चिड़ियाघर) घूम आती है ; वहां उसे बन्दरों के सीखचे के सामने खड़ा होने में अच्छा लगता है । जब उसके पिता कहीं मछली पकड़ने जाते तो वह उनके पास जाकर बैठ जाती । टेनिस खेलती है ; बैडमन्टन खेलने में तो उस्ताद है । यह सब दादा (बड़े भाई) से सीखा है । वह संचारिणी लता की भांति तन्वी (छरहरी) है, पुरा-सी हवा लगते ही झूमने लगती है । साज-शृंगार सहज और सुरचिपूर्ण है । वह जानती है कि साड़ी को किस प्रकार यहां-वहां से खींच-खांचकर, घुमा-फिराकर, ढील देकर या कसके श्रंगों की शोभा बढ़ाई जा सकती है । साथ ही उसका रहस्य भी समझ में नहीं आता । गाना अच्छी तरह नहीं जानती किन्तु सितार बजाती है । वह संगीत देखने के लिए है या सुनने के लिए, कौन जाने ! जान पड़ता है उसकी दुरन्त उंगलियां कोलाहल कर रही हैं । बात करने के लिए उसे कभी विषय का अभाव नहीं होता ; हंसने के लिए उसे उपयुक्त कारण की जरूरत नहीं पड़ती । साथ देने की उसमें अजस्र क्षमता है ; जहां भी रहती है वहां की रिक्तता को अकेली ही भर देती है । केवल नीरद के सामने वह एक दूसरा ही प्राणी बन जाती है ; पाल की नाव की

हवा वहां वन्द हो जाती है; फिर रस्सी के खिंचाव से वह नम्र मंथर गति से चलती है।

सभी कहते हैं कि ऊर्मि का स्वभाव अपने भाई जैसा ही प्राणवान है। ऊर्मि जानती है कि उसके भाई ने ही उसके मन को मुक्ति प्रदान की थी। हेमंत कहा करता था कि हमारे घर क्या हैं, मिट्टी के मनुष्य गढ़ने के सांचे हैं। तभी तो इतने समय से विदेशी जादूगर ऐसी सरलता के साथ तैंतीस करोड़ पुतलों को नचाते रहे हैं। वह कहता था, “जब मेरा समय आएगा तो इस सामाजिक पुतलेपन को तोड़ने के लिए काला पहाड़ की तरह निकल पड़ूंगा।” समय नहीं आया किन्तु ऊर्मि के मन को वह खूब सजीव करके छोड़ गया है।

इसीको लेकर मुश्किल हो गई। नीरद के काम करने का ढंग है अत्यन्त नियमबद्ध। पाठ्य की तरह कुछ बंधे नियम उसने ऊर्मि के लिए बना लिए। उसे उपदेश देते हुए बोला, “देखो ऊर्मि! रास्ता चलते-चलते मन को बार-बार छलकने न देना, नहीं तो मंजिल पर पहुंचते-पहुंचते घड़े में कुछ नहीं बचेगा।”

कहता, “तुम तितली की तरह चंचल हो घूमती-फिरती हो, कुछ भी संग्रह नहीं कर पातीं। तुम्हें होने पड़ेगा मधुमक्खी की तरह। प्रत्येक मुहूर्त का हिसाब है। जीवन कोई विलासिता नहीं है।”

सम्प्रति नीरद ने इम्पीरियल लाइब्रेरी से शिक्षातत्त्व पर पुस्तकें ला-लाकर पढ़ना शुरू किया है; उनमें इसी तरह की बातें लिखी हैं। उसकी भाषा किताबों की भाषा है, उसकी अपनी सहज भाषा नहीं है। ऊर्मि को सन्देह नहीं रहा कि वह अपराधिनी है। उसका व्रत महत् है, उसे भूलकर बात-बात में उसका मन इधर-उधर चला जाता है और उसे लांछित करता है। नीरद का दृष्टान्त तो सामने रखा है, कैसी आश्चर्यजनक दृढ़ता है, कैसा एकाग्र लक्ष्य है, सब प्रकार

१. बंगाल का एक ऐतिहासिक व्यक्ति जिसने अनेकानेक हिन्दुओं को मारा था।

कर सकता इसीलिए बोलने की इच्छा को ही दोष देता है। विचलित चित्त को मूक रखकर वह चला आता है और इसीको अपनी शक्ति का प्रमाण मानकर गर्व करता है। कहता है, "सेण्टीमेण्टेलिटी (भावुकता) पैदा करना मेरा काम नहीं है।" उस दिन ऊर्मि को रोने की इच्छा हुई पर उसकी कुछ ऐसी मनोदशा थी कि भक्तिवश समझ बैठे कि इसीको वीरता कहते हैं। तब वह अपने दुर्बल मन को निर्दयतापूर्वक यातना देने लगी। पर चाहे कितनी ही चेष्टा करे बीच-बीच में यह बात उसके सामने स्पष्ट हो ही उठती थी कि एक दिन प्रबल शोक से अभिभूत होकर कठिन कर्तव्य को उसने अपनी जिस इच्छा से अपनाया था, इतने समय में वह दुर्बल हो चुकी है और अब दूसरे की इच्छा को ही छाती से चिपका लिया है।

नीरद उससे स्पष्ट ही कहता, "देखो ऊर्मि ! इस बात को समझ रखो कि साधारण स्त्रियां पुरुषों से जिन स्तव-स्तुतियों की आशा रखती हैं, मुझसे उनके पाने की संभावना नहीं है। मैं तुम्हें जो दूंगा वह इन सब बनावटी बातों से अधिक सत्य होगा, अधिक मूल्यवान होगा।"

ऊर्मि सिर झुकाकर चुप बैठे रहती। मन ही मन कहती, 'इससे क्या कोई बात छिपी न रहेगी ?'

परन्तु किसी भी तरह वह मन को बांध नहीं पाती। छत पर झक्रेले घूमने चली जाती है। तीसरे पहर का प्रकाश घूसर होने लगता है। शहर के ऊंचे-नीचे नाना आकार के मकानों की चोटियों को लांघकर दूर गंगा के घाट पर लगे जहाजों के मस्तूलों के उस पार सूर्य अस्त होने लगता है। अनेक रंगोंवाले बादलों की लम्बी रेखाएं दिन की प्रांत-सीमा में दीवार-सी लगती हैं। धीरे-धीरे ये दीवारें भी लुप्त हो जाती हैं। गिर्जाघर की चोटी के ऊपर चांद निकल आता है। धुंधले आलोक में शहर स्वप्न-समान लगता है—मानो कोई अलौकिक मायापुरी हो। मन में सवाल उठता है कि क्या सबकुछ ही जीवन इतना अविचलित और कठिन है। क्या वह इतना रूपण है? न छुट्टी देता है, न रस देता है। एकाएक मन पागल हो उठता है; कोई बड़ी

शरारत करने की इच्छा होती है ; मन चिल्लाकर कहता है, 'मैं यह सब कुछ नहीं मानता !'

ऊर्मिमाला

नीरद ने रिसर्च (शोध) का जो काम लिया था वह समाप्त हो गया। यूरोप के किसी वैज्ञानिक समाज को वह शोध-प्रबन्ध भेज दिया। उन लोगों ने प्रशंसा की, साथ ही एक स्कालरशिप (छात्र-वृत्ति) भी दी। उसने निश्चय किया कि वहां के विश्वविद्यालय की डिग्री लेने के लिए वह समुद्र-यात्रा करेगा।

विदाई के समय कोई कारण वातचीत नहीं हुई। उसने केवल इतनी बात बार-बार कही, "मैं जा रहा हूँ; मुझे बस यही आशंका है कि अब तुम अपने कर्तव्य-साधन में शिथिलता करोगी।"

ऊर्मि बोली, "आप कोई भय न कीजिए।"

नीरद ने कहा, "तुम्हें किस प्रकार चलना है, इस सम्बन्ध में एक विस्तृत नोट लिखकर दिए जा रहा हूँ।"

ऊर्मि बोली, "मैं ठीक उसीके अनुसार चलूंगी।"

"किन्तु मैं तुम्हारी आलमारी की इन किताबों को अपने घर ले जाकर बन्द करके रख जाना चाहता हूँ।"

'ले जाइए' कहकर ऊर्मि ने चाबी उसके हाथ में दे दी। एक बार सितार पर नीरद की दृष्टि गई किन्तु दुविधावश वह रुक गया।

अन्त में कर्तव्य की दृष्टि से नीरद को बोलना ही पड़ा, "मुझे केवल एक बात का भय है। शशांक बाबू के यहां यदि बार-बार तुम्हारा आना-जाना होता रहा तो तुम्हारी निष्ठा दुर्बल हो जाएगी, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। यह न समझो कि मैं शशांक की निन्दा कर रहा हूँ। वे बड़े अच्छे आदमी हैं। व्यवसाय में वैसा उत्साह वैसी बुद्धि कम ही बंगालियों में दिखाई पड़ती है पर उनका दोष यही है कि वे किसी आइडियल (आदर्श) को नहीं

सच कहता हूं, उनके बारे में प्रायः मुझे भय लगा रहता है।”

फिर तो शशांक के अनेक दोषों की बात छिड़ गई। तब अपने मन की एक दुर्भावना की बात नीरद छिपा न सका। वह बोला, “जो सब दोष आज ढके पड़े हैं वे उम्र के साथ प्रबल रूप धारण कर प्रकट होते रहेंगे।” इतने पर भी वह मुक्त कण्ठ से स्वीकार करता है कि वे बड़े भले आदमी हैं। किन्तु इसके साथ ही वह यह भी कहना चाहता है कि उनके संग-दोष से, उस घर के वातावरण से भी अपने को बचाए रखना ऊर्मि के लिए बहुत जरूरी है। ऊर्मि का मन यदि उन लोगों के मन-स्तल पर उतर गया तो यह अधःपतन होगा।

ऊर्मि ने कहा, “आप इतने उद्विग्न क्यों हो रहे हैं ?”

“क्यों उद्विग्न हो रहा हूं, सुनोगी ? नाराज तो न होगा ?”

“सत्य बात सुनने की शक्ति आप से ही पाई है। जानती हूं, यह सरल नहीं है, फिर भी सहन कर सकती हूं।”

“तब कहता हूं, सुनो। तुम्हारे स्वभाव के साथ शशांक बाबू का स्वभाव मिलता है, इसे मैंने अच्छी तरह ध्यान देकर देखा है। उनका मन विलकुल हलका है और वही तुम्हें अच्छा लगता है। बोली, ठीक या नहीं ?”

ऊर्मि सोचती है, यह आदमी क्या सर्वज्ञ है ? उसके जीजा उसे बहुत अच्छे लगते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसका प्रधान कारण यह है कि शशांक ‘हा-हा’ करके हंस सकता है, उत्पात करना जानता है, हंसी-मजाक करता है। वह ठीक-ठीक यह भी जानता है कि कौन-सा फूल और किस रंग की साड़ी ऊर्मि को पसन्द है।

ऊर्मि बोली, “हां, वे मुझे अच्छे लगते हैं, यह बात सत्य है।”

नीरद ने कहा, “शर्मिला जीजी का प्रेम स्निग्ध-गम्भीर है; उनकी सेवा एक पुण्य-कर्म है; वे कभी अपने कर्तव्य से छुट्टी नहीं लेतीं। उन्हींके प्रभाव से शशांक बाबू ने एकाग्र मन से काम करना सीखा है। किन्तु जिस दिन तुम भवानीपुर जाती हो उसी दिन उनका नकली चेहरा हट जाता है, तुमसे छेड़छाड़ और छीन-झपट करने लगते हैं,

कभी तुम्हारे जूड़े का कांटा निकालकर बाल बिखरा देते हैं, कभी तुम्हारी पढ़ने की किताब छीनकर आलमारी के ऊपर रख देते हैं। ज़रूरी काम होने पर भी एकाएक (तुम्हारे साथ) टेनिस खेलने का शौक प्रबल हो उठता है।”

ऊर्मि को मन ही मन मानना पड़ा कि शशांक जीजा जी इस प्रकार की शरारतें करते हैं। इसीलिए उसे इतने अच्छे लगते हैं। उनके पास जाते ही उसका बचपन उसमें मचल उठता है। वह भी उनपर कुछ कम अत्याचार नहीं करती। जीजी उन दोनों का ऊबम देखकर शांत स्निग्ध हंसी हंस देती हैं। कभी-कभी मृदु तिरस्कार भी करती हैं पर वस्तुतः वह तिरस्कार का आभास-मात्र होता है।

नीरद ने उपसंहार में कहा, “जहां तुम्हें अपने स्वभाव को प्रथम न मिले वहीं तुम्हें रहना चाहिए। मैं पास रहता तो चिन्ता नहीं थी क्योंकि मेरा स्वभाव तुमसे सर्वथा विपरीत है। तुम्हारा मन रखने के लिए तुम्हारे मन को ही चौपट कर देना, यह मुझसे कभी नहीं हो सकता।”

ऊर्मि सिर झुकाए हुए बोली, “आपकी बात मैं सदा याद रखूंगी।”

नीरद ने कहा, “मैं कुछ पुस्तकें तुम्हारे लिए रखे जाता हूँ। मैंने जिन अध्यायों में निशान लगा दिए हैं उन्हें विशेष रूप से पढ़ना। आगे वह तुम्हारे काम आएगा।”

ऊर्मि को ऐसी सहायता की आवश्यकता थी क्योंकि इधर बीच-बीच में उसके मन में सन्देह उठा करता है कि प्रथम उत्साह में आकर वह कुछ भूल कर बैठी है। कदाचित् डाक्टरी उसकी प्रवृत्ति से मेल न खाएगी।

नीरद द्वारा चिह्नित पुस्तकें उसके लिए कड़े बंधन का काम देंगी और उसे पार लगा देंगी।

नीरद के विलायत चले जाने पर ऊर्मि ने अपने ऊपर और कठोर

अत्याचार करना शुरू किया। कालेज जाती है, पर और जो समय बचता है उसमें अपने को पूर्णतः जनानखाने में बन्द रखती है। सारे दिन के बाद कालेज से घर लौटने पर उसका थका हुआ मन जितना ही छुट्टी पाने के लिए तरसता है उतनी ही निष्फुरता के साथ उसे वह अध्ययन की सांकल में बांधकर रखने का प्रयत्न करती है। पढ़ा नहीं जाता, एक ही पन्ने पर बार-बार मन को व्यर्थ लगाती है किन्तु वह घूमता ही रहता है। तब भी वह हार नहीं मानती। नीरद उपस्थित नहीं है, इसीसे उसकी दूरवर्ती इच्छाशक्ति मानो उसे और अधिक प्रभावित कर रही है।

अपने ऊपर धिक्कार का भाव तब उत्पन्न होता है जब काम करते-करते पहले के दिनों की बात बार-बार याद आती है। युवकों के दिल में उसके भक्त अनेक थे। उन दिनों किसीकी उसने उपेक्षा की है तो किसीकी और उसके मन में आकर्षण भी हुआ है। प्रेम में पूर्णता तब नहीं आई थी किन्तु प्यार करने की इच्छा उसके मन में मन्द वासन्ती वायु की भांति डोलती फिरती थी। तभी तो वह मन मन गुनगुनाया करती थी और अपनी पसन्द की कविताएं कापी में रखती थी। मन के बहुत उतावला होने पर सितार बजाने लगती थी। आजकल किसी-किसी दिन ऐसा होता है कि जब वह सांघ्या-वेला में कोई किताब खोलकर पढ़ने बैठती है तब उसके मन में अकस्मात् ऐसे किसी दिन की और किसी आदमी की छवि मंडराने लगती है जिस दिन या जिस आदमी पर उसने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया, बल्कि उस आदमी के अधिक आग्रह से उसके प्रति मन विरक्त हो उठा था। जान पड़ता है कि आज उसका आग्रह ही भीतर की अतृप्त वेदना को छू-छू जाता है, तितली के क्षणिक हलके पंख जैसे फूल को बसन्त का स्पर्श दे जाते हैं।

इन सब विचारों को वह जितने वेग के साथ मन से दूर करना चाहती है, प्रतिघात से वे उतने ही वेग के साथ उसके मन में लौटकर घूमते रहते हैं। नीरद का एक फोटोग्राफ उसने डेस्क पर लगा दिया

है। उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती रहती है। उसके मुख पर बुद्धि की दीप्ति है, आग्रह का चिह्न नहीं है। उसे वह अपने पास बुलाता ही नहीं तो उसका मन जवाब दे किसे? मन ही मन में वह सिर्फ यह जपती रहती है, 'कैसी प्रतिभा है, कैसी तपस्या है, कैसा निर्मल चरित्र है, मेरा कैसा अचिन्त्य सौभाग्य है!'

यहां यह कह देना भी आवश्यक है कि एक बात में नीरद की जीत हुई है। नीरद के साथ ऊर्मि का विवाह-सम्बन्ध निश्चित हो जाने पर शशांक तथा और भी संदिग्धमना दस-पांच लोगों ने उपहास किया था। कहते थे, "राजाराम बाबू सीधे आदमी हैं, झूठ समझ बैठे कि नीरद आदर्शवादी है। उसका आदर्शवाद ऊर्मि की थैली में गुप-चुप किस प्रकार अंडे दे रहा है, इस बात को क्या लम्बे-लम्बे साधु-वाक्यों से ढका जा सकता है! अपने को बलिदान जरूर कर रहा है परन्तु यह बलिदान जिस देवता के लिए है उसका मन्दिर है इम्पीरियल बैंक में! हम लोग सीधे-सीधे समुद्र से कह देते हैं कि रुपयों की जरूरत है और वे रुपये व्यर्थ नहीं जाएंगे, उन्हींकी कन्या की सेवा में खर्च होंगे। नीरद महान पुरुष है, कहता है कि महत्व उद्देश्य के लिए ही व्याह करेगा! उसके वाद उस उद्देश्य का रोज-रोज अनुवाद करता रहेगा समुद्र की चैकबुक पर!"

नीरद जानता था कि ऐसी चर्चा अपरिहार्य है। ऊर्मि से बोला, "मेरे व्याह करने में एक शर्त है। तुम्हारे रुपयों में से मैं एक पैसा न लूंगा, अपनी कमाई ही मेरा सहारा होगी।" समुद्र ने स्वयं उसे यूरोप भेजने का प्रस्ताव किया था पर वह किसी तरह राजी नहीं हुआ। इसके लिए उसे बहुत दिनों तक इन्तजार करना पड़ा। राजाराम बाबू को बतला दिया था, "अस्पताल-निर्माण के लिए जितने भी रुपये आप देना चाहें, वे सब अपनी लड़की के नाम से दें। मैं जब उस अस्पताल का भार उठाऊंगा तो उसके लिए कोई वृत्ति नहीं लूंगा। मैं डाक्टर हूँ, जीविका के लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है।"

उसकी ऐसी एकान्त निस्पृहता देखकर उसपर राजाराम की भक्ति दृढ़ हो गई तथा ऊर्मि ने भी बड़ा गर्व अनुभव किया। इस गर्व का उचित कारण होने से ही शर्मिला का मन नीरद से एकदम फिर गया। बोली, “हिंसा ! देखूंगी, यह दिमाग कब तक रहता है !” इसके बाद तो ऐसा हो गया कि जब नीरद अभ्यासवश बड़ी गम्भीरता के साथ कोई बात करने लगता तो बात के बीच में ही उठकर शर्मिला गर्दन टेढ़ी किए कमरे से बाहर चली जाती। उसकी पदचाप कुछ दूर तक सुनाई पड़ती रहती। ऊर्मि के खयाल से कुछ बोलती नहीं परन्तु उसके कुछ न कहने की व्यंजना काफी तेजोत्प्ल होती।

शुरू-शुरू में नीरद हर डाक में चार-चार पांच-पांच पन्ने के पत्रों में विस्तृत उपदेश लिखकर भेजता रहा। कुछ दिन बाद एकाएक चौंकानेवाला एक तार भेजा। उसमें अध्ययन के लिए एक बड़ी रकम मांगी गई थी। जो गर्व, इतने दिनों से, ऊर्मि का प्रधान अवलम्ब था उसे गहरी चोट लगी किन्तु उसे कुछ सान्त्वना भी मिली। ज्यों-ज्यों दिन जाने लगे और नीरद की अनुपस्थिति लम्बी होने लगी त्यों-त्यों ऊर्मि का पूर्व-स्वभाव कर्तव्य को चारदीवारी से निकल भागने की खोजने लगा। वह अपने को अनेक प्रकार से धोखा भी देती, फिर अनुताप भी करती। ऐसी आत्मग्लानि के समय नीरद को आर्थिक सहायता देना उसके पश्चात्ताप-दग्ध मन के लिए सान्त्वना-जनक था।

ऊर्मि ने तार मैनेजर के हाथ में देते हुए संकोचपूर्वक कहा, “काका बाबू, रुपये...”

मैनेजर बाबू ने कहा, “कुछ गोरखधंधा मालूम पड़ता है। हम लोग तो समझते थे कि रुपये उस पक्ष के लिए अस्पृश्य हैं।” मैनेजर नीरद को पसन्द नहीं करते थे।

ऊर्मि बोली, “किन्तु विदेश में...” पर बात पूरी न कह सकी।

काका बाबू बोले, “मैं जानता हूँ कि इस देश का स्वभाव विदेश की मिट्टी में बदल भी जा सकता है किन्तु क्या हम लोग उनसे ताल

मिलाकर चल भी सकेंगे ?”

ऊर्मि बोली, “रुपये न पाने से वे विपत्ति में पड़ सकते हैं।”

बहुत अच्छा, भेजे देता हूँ। तुम ज्यादा चिन्ता न करो। किन्तु इतना कहे देता हूँ कि यह तो शुरू हुआ है, यहीं अन्त नहीं है।”

‘अन्त नहीं है’ इसका प्रमाण थोड़े ही दिनों में मिल गया। इस बार और बड़ी रकम की मांग थी। इस बार की आवश्यकता स्वास्थ्य-रक्षा के लिए थी। मैनेजर ने गम्भीर मुंह बनाकर कहा, “शशांक वावू से परामर्श कर लेना अच्छा होगा।”

ऊर्मि घबराकर बोल उठी, “आर चाहे जो कीजिए परन्तु जीजी तक यह खबर न पहुंचने पाए।”

“अकेले यह जिम्मेदारी उठाना ठीक नहीं लगता।”

“एक दिन तो रुपया सब उन्हींके हाथ पड़ेगा।”

“पड़ने के पूर्व देखना होगा कि वह पानी में न जा पड़े।”

“किन्तु उनके स्वास्थ्य का खयाल तो रखना ही पड़ेगा।”

“अस्वास्थ्य भी बहुत तरह का होता है। यह ठीक किस तरह का है, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यहां लौट आएं तो कदाचित् वायु-परिवर्तन से स्वस्थ हो जाएं। वापसी यात्रा की व्यवस्था करके बुला लेना चाहिए।”

वापस बुलाने के प्रस्ताव से ऊर्मि इतनी ज्यादा विचलित हो उठी कि अपने को ही नीरद के उच्च उद्देश्य में बाधक समझ बैठी।

काका बोले, “इस बार तो रुपया भेजे देता हूँ किन्तु मेरी समझ से तो इससे डाक्टर वावू का स्वास्थ्य और बिगड़ जाएगा।”

मैनेजर राधागोविन्द दूर के नाते से ऊर्मि के आत्मीय लगते हैं। इसीलिए उन्होंने अपनी बात में जो संकेत किया वह उसे चुभ गया। मन में सन्देह पैदा हुआ। सोचने लगी, ‘जीजी से कहना ही पड़ेगा।’ और अपने को धक्का देकर बार-बार प्रश्न करने लगी, ‘मुझे यथोचित दुःख क्यों नहीं हो रहा है?’

इसी समय शर्मिला की बीमारी को लेकर मन में चिन्ता उठने लगी। भाई की बात याद करके उसे भय लगने लगा। अनेक डाक्टर अनेक दिशाओं से उसकी बीमारी के वासस्थान या जड़ का पता लगाने में लगे थे। शर्मिला क्लान्त हंसी हंसती हुई बोली, "सी० आई० डी० के हाथों से अपराधी तो निकल भागेगा, मरेगा वेचारा निरपराध।"

शशांक ने चिन्तित मुख से कहा, "शरीर की खानातलाशी शास्त्र-मत से ही चलने दो, भुगतने या मरने की कोई बात नहीं है।"

और उसी समय शशांक के हाथ में दो भारी काम आ गए। एक था गंगा-तट पर जूट मिल का, दूसरा टालीगंज की तरफ, मीरपुर के जमींदार के नूतन उद्यान-भवन के निर्माण का। जूट मिल ही कुली-वस्ती का काम पूरा कर देने की अवधि थी तीन मास की। कई स्थानों पर ट्यूबवैल भी बिठाने थे। शशांक को ज़रा भी फुर्सत नहीं थी। शर्मिला की बीमारी के कारण अक्सर उसे रुक जाना पड़ता परन्तु काम के लिए उत्कण्ठा बनी रहती।

उनका विवाह हुए इतने दिन ही गए किन्तु ऐसी बीमारी शर्मिला कभी नहीं हुई जिसके कारण शशांक को विशेष चिन्ता करनी पड़ी हो। इसीलिए इस बार की बीमारी के उद्वेग से उसका मन वच्चों की तरह छटपटाने लगा। काम-काज से लौटकर वह शय्या के पास निरुपाय भाव से बैठ जाता। माथे पर हाथ फेरता हुआ पूछता, "कैसी तबीयत है?" शर्मिला उत्तर देती, "तुम व्यर्थ चिन्ता न करो, मैं अच्छी हूँ।" इसपर विश्वास तो नहीं होता किन्तु विश्वास करने की एकांत इच्छा होने के कारण शशांक अविलम्ब विश्वास करके छुट्टी पा जाता।

शशांक बोला, "डेनकनाल के राजा का एक बड़ा काम मेरे हाथ आया है। प्लैन के विषय में दीवान से बात करनी पड़ेगी। जितनी जल्दी संभव होगा, वापस आ जाऊंगा, डाक्टर आने के पहले ही लौट आऊंगा।"

शर्मिला ने उलाहना देते हुए कहा, "तुम्हें मेरे सिर की कसम, जल्दवाजी में काम न चौपट कर देना। मैं समझ रही हूँ कि तुम्हें वहाँ (ढेनकनाल) भी जाने की आवश्यकता है। जरूर जाओ, न जाने से मैं अच्छी नहीं होऊंगी। मेरी देख-रेख करने के लिए यहाँ बहुत आदमी हैं।"

एक प्रकांड ऐश्वर्य अर्जित करने का संकल्प शशांक के मन में दिन-रात घूमा करता है। वस्तुतः ऐश्वर्य की ओर नहीं, बड़ा आदमी होने की ओर उसका आकर्षण है। कोई बड़ी चीज गढ़ डालना ही पुरुष का दायित्व है। धन को तुच्छ मानकर उसकी अवज्ञा करना तभी तक संभव है जब तक उससे किसी प्रकार दिन विताना पड़ता है। किन्तु जब उसकी चोटी को बहुत ऊँचाई पर पहुंचा दिया जाता है तब सर्वसाधारण उसके प्रति सम्मान प्रकट करने लगते हैं। भले उससे अपना उपकार न हो, उसका बड़प्पन देखने-मात्र से चित्त में स्फूर्ति होती है। शर्मिला के सिरहाने बैठे शशांक के मन में जब उद्वेग चलता रहता उन्हीं क्षणों में वह यह भी सोचे बिना नहीं रह पाता कि उसके काम-काज की दुनिया में अनिष्ट की आशंका किस स्थान पर घटित हो रही है। शर्मिला जानती है कि शशांक की यह चिन्ता कृपण की चिन्ता नहीं है बल्कि अपनी अवस्था के निम्नतल से ऊपर की ओर चिन्ते हुए जयस्तंभ निर्माण करने के पौरुष की चिन्ता है। शशांक के इस गौरव से शर्मिला गौरवान्वित है। वही स्वामी उसकी बीमारी की सुश्रूषा के कारण अपने काम-काज में लापरवाही करें, यह बात उसको अपने लिए सुखकर होने पर भी अच्छी नहीं लगती। इसीलिए वह शशांक को वार-वार काम पर भेजती रहती है।

इस दिशा में अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में शर्मिला की चिन्ता की सीमा नहीं है। वह स्वयं तो विछौने पर पड़ी है, नाँकर-चाकर क्या करते होंगे, कौन जाने ! इसमें सन्देह नहीं कि रसोई में घी नष्ट होता होगा, स्नानघर में समय पर गर्म पानी रखने में भूल होगी, विछौने की चादर समय पर न बदली जाती होगी,

नाली में नियमित रूप से नहीं फिरती होगी। धोबी के यहां से आए कपड़े लिखित सूची से मिलाए बिना ले लेने से उनमें जो उलट-पलट होता होगा वह तो मालूम ही है। शर्मिला से रहा नहीं जाता, चुपके से विछौना छोड़कर घर संभालने चल देती है, जिससे वेदना बढ़ जाती है, बुखार आ जाता है और डाक्टर की समझ में नहीं आता कि यह क्या हो गया।

अन्त में ऊर्मिमाला को उसकी जीजी ने बुला भेजा। बोली, “बहिन ! कुछ दिन के लिए तू कालेज छोड़कर मेरे घर की रक्षा कर। नहीं तो मैं निश्चित होकर मर भी नहीं सकूंगी।”

जो इस इतिहास को पढ़ रहे होंगे वे इस स्थान पर मुस्करा के कहेंगे, “समझ लिया !” समझने के लिए ज्यादा श्रम की जरूरत नहीं। जो होनी है, वही होती है, और वही यथेष्ट है। और मन में यह समझने का भी कारण नहीं कि भाग्य का खेल, ताश के पत्तों की तरह छिपे-छिपे, और शर्मिला की आंखों में धूल डालकर चलता रहेगा।

‘जीजी की सेवा करने जा रही हूँ’ यह सोचकर उर्मि के मन में बड़ा उत्साह हुआ। इस कर्तव्य के लिए अन्य सब काम एक ओर हटा दना होगा। और उपाय ही नहीं है। इसके अलावा तीमारदारी का यह काम भविष्य के डाक्टरों के काम से ही सम्बन्धित है, यह तर्क भी उसके मन में उत्पन्न हुआ।

उसने चमड़े की जिल्दवाली एक नोटबुक ली। उसमें बीमारी के दैनिक ज्वार-भाटा (चढ़ाव-उतार) का हिसाब रेखांकित करने के लिए खाने बने हैं। पीछे से डाक्टर अनभिज्ञ कहकर अवज्ञा न करें इसलिए उसने निश्चय किया कि जीजी के रोग के विषय में जहां जो मिले उसे पढ़ लेना चाहिए। एम० एस-सी० परीक्षा में उसका विषय है शरीरतत्त्व। इसलिए रोगतत्त्व के पारिभाषिक शब्दों के समझने में उसे कठिनाई न होगी। तात्पर्य यह कि जीजी की सेवा में लगने से उसका कर्तव्यसूत्र भी टूटता नहीं, बल्कि वह एकाग्र मन और कठिन्तर प्रयत्न से उसीका अनुसरण करेगी, यह समझकर वह अपने पढ़ने की

पुस्तकें और खातापत्र इत्यादि बैग में भर भवानीपुर के मकान में आ उपस्थित हुई। परन्तु जीजी के रोग को लेकर रोगतत्त्व के सम्बन्ध में मोटी-मोटी पुस्तकों से नोट लेने का मौका ही नहीं मिला क्योंकि विशेषज्ञ अभी तक रोग के नाम का ही निर्णय नहीं कर पाए हैं।

जर्मि ने सोचा, उसे शासनकर्ता का काम मिला है। इसलिए उसने मुंह गंभीर बनाकर जीजी से कहा, “डॉक्टर के आदेशों का ठीक-ठीक पालन हो रहा है या नहीं, यह देखना मेरा काम है। इसलिए मैं तुम्हें कहे देती हूँ कि मेरी बात माननी होगी।”

जीजी ने उसके दायित्व का आडम्बर देख हंसकर कहा, “अरी, तूने इतना गंभीर होना एकाएक किस गुरु से सीख लिया? नूतन दीक्षा है न, इसीसे इतना उत्साह है। मैंने तो तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तू मेरी बात सुनेगी। तेरा अस्पताल तो अभी तैयार हुआ नहीं, मेरा घर बना-बनाया तैयार है। अभी तू उसका भार संभाल ले, तो तेरी जीजी को ज़रा छुट्टी मिल जाए।”

जीजी ने रोगशय्या के पास से उसे ज़वर्दस्ती हटा दिया।

आज जीजी के गृहराज्य में उसे प्रतिनिधि का पद मिला है। वहाँ अराजकता छा रही है, तुरन्त ही उसकी रोक-थाम करनी है। इस गृहस्थी के सर्वोच्च शिखर पर जो एकमात्र पुरुष विराजमान है, उसकी सेवा में ज़रा भी त्रुटि न होने पाए, इस महत् उद्देश्य के लिए हर प्रकार के त्याग करना इस घर के छोटे-बड़े समस्त अधिवासियों का एकमात्र कर्तव्य है। वह वेचारा बिलकुल निरुपाय है और अपने शरीर की देखभाल में शौचनीय रूप से अकर्मण्य है, इस प्रकार का कुछ ऐसा संस्कार शर्मिला के मन में बैठ गया है कि किसी प्रकार दूर नहीं होता। हंसी भी आती है और मन स्नेहासिक्त भी हो जाता है जब देखती है कि चुरट की आग से भलेमानस की आस्तीन जल रही है और उसे होश ही नहीं है। सुबह मुंह धोकर सोने के कमरे के कोने में लगा नल खुला ही छोड़कर इंजीनियर ताहव तावड़तोड़ बाहर अपने काम पर भाग जाते हैं, लौटकर देखते हैं कि :

नाली में नियमित रूप से नहीं फिरती होगी। घोड़ी के यहां से आए कपड़े लिखित सूची से मिलाए बिना ले लेने से उनमें जो उलट-पलट होता होगा वह तो मालूम ही है। शर्मिला से रहा नहीं जाता, चुपके से बिछौन छोड़कर घर संभालने चल देती है, जिससे वेदना बढ़ जाती है, बुखा आ जाता है और डाक्टर की समझ में नहीं आता कि यह क्या हो गया।

अन्त में ऊर्मिमाला को उसकी जीजी ने बुला भेजा। बोली "बहिन ! कुछ दिन के लिए तू कालेज छोड़कर मेरे घर की रक्षा कर नहीं तो मैं निश्चित होकर मर भी नहीं सकूंगी।"

जो इस इतिहास को पढ़ रहे होंगे वे इस स्थान पर मुस्करा वे कहेंगे, "समझ लिया !" समझने के लिए ज्यादा अवल की जरूरत नहीं जो होनी है, वही होती है, और वही यथेष्ट है। और मन में यह समझने का भी कारण नहीं कि भाग्य का खेल, ताश के पत्तों की तरह छिपे-छिपे, और शर्मिला की आंखों में धूल डालकर चलता रहेगा।

'जीजी की सेवा करने जा रही हूँ' यह सोचकर ऊर्मि के मन में बड़ा उत्साह हुआ। इस कर्तव्य के लिए अन्य सब काम एक ओर हट ना होगा। और उपाय ही नहीं है। इसके अलावा तीमारदारी का यह काम भविष्य के डाक्टरों के काम से ही सम्बन्धित है, यह तब भी उसके मन में उत्पन्न हुआ।

उसने चमड़े की जिल्दवाली एक नोटबुक ली। उसमें बीमारी के दैनिक ज्वार-भाटा (चढ़ाव-उतार) का हिसाब रेखांकित करने के लिए खाने बने हैं। पीछे से डाक्टर अनभिज्ञ कहकर अवज्ञा न करे इसलिए उसने निश्चय किया कि जीजी के रोग के विषय में जहां जं मिले उसे पढ़ लेना चाहिए। एम० एस-सी० परीक्षा में उसका विषय है शरीरतत्त्व। इसलिए रोगतत्त्व के पारिभाषिक शब्दों के समझने में उसे कठिनाई न होगी। तात्पर्य यह कि जीजी की सेवा में लगने से उसका कर्तव्यसूत्र भी टूटता नहीं, बल्कि वह एकाग्र मन और कठिनता प्रयत्न से उसीका अनुसरण करेगी, यह समझकर वह अपने पढ़ने का

पुस्तकों और खातापत्र इत्यादि बैग में भर भवानीपुर के मकान में आ उपस्थित हुई। परन्तु जीजी के रोग को लेकर रोगतत्त्व के सम्बन्ध में मोटी-मोटी पुस्तकों से नोट लेने का मौका ही नहीं मिला क्योंकि विशेषज्ञ अभी तक रोग के नाम का ही निर्णय नहीं कर पाए हैं।

ऊर्मि ने सोचा, उसे शासनकर्ता का काम मिला है। इसलिए उसने मुंह गंभीर बनाकर जीजी से कहा, "डाक्टर के आदेशों का ठीक-ठीक पालन हो रहा है या नहीं, यह देखना मेरा काम है। इसलिए मैं तुम्हें कहे देती हूँ कि मेरी बात माननी होगी।"

जीजी ने उसके दायित्व का आडम्बर देख हंसकर कहा, "अरी, तूने इतना गंभीर होना एकाएक किस गुरु से सीख लिया? नूतन दीक्षा है न, इसीसे इतना उत्साह है। मैंने तो तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तू मेरी बात सुनेगी। तेरा अस्पताल तो अभी तैयार हुआ नहीं, मेरा घर बना-बनाया तैयार है। अभी तू उसका भार संभाल ले, तो तेरी जीजी को ज़रा छुट्टी मिल जाए।"

जीजी ने रोगशय्या के पास से उसे ज़बरदस्ती हटा दिया।

आज जीजी के गृहराज्य में उसे प्रतिनिधि का पद मिला है। वहाँ अराजकता छा रही है, तुरन्त ही उसकी रोक-थाम करनी है। इस गृहस्थी के सर्वोच्च शिखर पर जो एकमात्र पुरुष विराजमान है, उसकी सेवा में ज़रा भी त्रुटि न होने पाए, इस महत्व उद्देश्य के लिए हर प्रकार के त्याग करना इस घर के छोटे-बड़े समस्त इविवास्तियों का एकमात्र कर्तव्य है। वह बेचारा बिलकुल निरुपाय है और अपने कर्तव्य की देखभाल में शोचनीय रूप से अकर्मण्य है, इस प्रकार का कुछ ऐसा संस्कार शर्मिला के मन में बैठ गया है कि किसी प्रकार हर नहीं होता। हंसी भी आती है और मन स्नेहान्मिक्त भी हो जाता है जब देखती है कि चुरट की आग से भलेमानस की आर्त्तित जन रही है और उसे होश ही नहीं है। सुबह मुंह बौकर सोने के कमरे के कमरे में लगा नल खुला ही छोड़कर इंजीनियर साहब ताबड़तोड़ दौड़ अपने काम पर भाग जाते हैं, लौटकर देखते हैं कि कमरे

गया है और कालीन नष्ट हो गया है। इस जगह नल लगाए जाते समय ही शर्मिला ने विरोध किया था। जानती थी कि इस भले आदमी के हाथ से बिस्तर से थोड़ी ही दूर पर स्थित नल के कोने में जल और स्याल का, देखने लायक गठबंधन हुआ करेगा। किन्तु हज़रत ठहरे बड़े भारी इंजीनियर, वैज्ञानिक सुविधा की दुहाई देकर अनेक असुविधाओं की सृष्टि करने में ही उनका उत्साह रहता है। खामखा दिमाग में न जाने क्या आ गया कि एक बार अपनी पूर्ण मौलिक योजना के अनुसार एक 'स्टोव' बना डाला। उसमें इधर दरवाज़ा, उधर दरवाज़ा, एक ओर चोंगा तो दूसरी ओर कुछ और; एक ओर आग का अपव्ययहीन उद्दीपन होता है तो दूसरे ढालू रास्ते से राख इत्यादि गिरती जाती है। फिर उसमें सेंकने, तलने, पकाने-उबालने, पानी गर्म करने—सब प्रकार के कामों के लिए व्यवस्था थी। बड़े उत्साह एवं सुन्दर वाणी से उसकी महत्ता स्वीकार करनी पड़ी, प्रयोग तथा व्यवहार की दृष्टि से नहीं बल्कि शान्ति और सद्भाव बनाए रखने के लिए। प्राप्तवयस्क बच्चों का खेल ऐसा ही होता है। वाधा देने पर अनर्थ होता है, वैसे दो दिनों में खुद भूल जाएंगे। सदा से चली आई हुई व्यवस्था में मन नहीं लगता, कुछ न कुछ उद्भट की सृष्टि करने को मन करता है, और स्त्रियों की जिम्मेदारी यह है कि मुंह से उनकी हां में हां मिलाना और करना अपने मतानुसार। ऐसे ही स्वामी के पालन की जिम्मेदारी इतने दिनों से शर्मिला आनन्दपूर्वक निभाती चली आ रही है।

इतना समय तो कट गया। अपने को अलग करके शशांक की दुनिया की कल्पना ही शर्मिला नहीं कर सकती। आज भय हो रहा है कि कहीं बीच में यमदूत आकर जगत् और जगद्धात्री के बीच विच्छेद न कर दें। यही क्यों उसे तो आशंका है कि मृत्यु के बाद भी शशांक की शारीरिक असावधानी उसकी विदेही आत्मा को शान्ति न पाने देगी। भाग्य से ऊर्मि है किन्तु वह उसकी तरह शान्त नहीं है। फिर भी उसके बदले काम-काज तो चलाए जा रही है। वह काम भी तो

स्त्रियों के हाथ से किए जानेवाला ही काम है। इन स्निग्ध हाथों का स्पर्श न हो तो पुरुषों के दैनिक जीवन के प्रयोजन में कुछ रस ही नहीं रह जाता और सब कुछ एक प्रकार से श्रीहीन हो जाता है। इसीलिए ऊर्मि जब अपने सुन्दर हाथों में छुरी लेकर सेव के छिलके उतारती और उन्हें काट-काटकर रखती है, नारंगी की फांकों निकालकर सफेद पत्थर की तश्तरी में लगाती है और वेदाना अनार छीलकर उसके दाने-दाने को एकत्रित कर सजा देती है तब शर्मिला अपनी बहिन में अपने को ही पा जाती है। विछीने पर पड़ी-पड़ी सदा ही उससे काम की फर्माइश करती रहती है :

“उनका सिगरेट-केस तो भर दे ऊर्मि !”

“देख तो, उन्हें मैले रुमाल को बदलने का खयाल नहीं होगा।”

“ज़रा देख तो, जूतों में सीमेंट-वालू जम गई होगी। बेयरे को हुक्क देकर साफ करवा लेने का भी होश नहीं।”

“अरी बहिन ज़रा तकियों के गिलाफ तो बदल दे।”

“इन रद्दी फटे कागज़ों को टोकरी में डाल दे।”

“एक वार आफिसवाला कमरा तो देख आ ऊर्मि ! मुझे निश्चय है कि वे कैश-बक्स की चाबी डेस्क के ऊपर ही छोड़कर चले गए होंगे।”

“याद रखना फूलगोभी के पौधे लगाने का समय आ गया है।”

“माली से बोल दे कि गुलाब की डालियां छांट दे।”

“देखो, कोट के पीछे चूना लग गया है, इतनी जल्दी किसलिए है, ज़रा ठहरो न ! ऊर्मि, ज़रा ब्रश तो कर दे बहिन।”

ऊर्मि पुस्तक-पढ़ी लड़की है, काम करनेवाली लड़की नहीं, फिर भी उसे इसमें मज़ा आता है। जिन कठोर नियमों के बीच में वह थी, उनमें से बाहर आने के बाद सारे ही काम-काज उसे अनियम से ही मालूम पड़ते हैं। इस घर-गृहस्थी की कर्मधारा के भीतर ही भीतर जो उद्वेग है, साधना है वह तो उसके मनमें है नहीं। उस चिन्ता का सूत्र है उसकी जीजी के बीच। इसी हेतु ऊर्मि के लिए ये सब

काम खेल से लगते हैं। एक प्रकार की छुट्टी है, उद्देश्यहीन उद्योग। वह इतने दिनों तक जहां थी, यह उससे अलग ही एक स्वतन्त्र जगत् है; यहां उसके सामने कोई लक्ष्य तर्जनी दिखानेवाला नहीं है, फिर भी दिन काम से भरे हुए हैं और वह काम-काज भी विचित्र ही है। भूल हो, त्रुटि हो, पर उसके लिए कोई खास जवाब-देही नहीं है। जीजी यदि कभी कुछ तिरस्कार करने की चेष्टा करती भी हैं तो शशांक उसे हंसकर उड़ा देता है, जैसे ऊर्मि की भूलों में कोई विशेष रस हो। वस्तुतः आजकल इस घर से दायित्व का गांभीर्य दूर हो गया है, एक ऐसी शिथिल अवस्था आ गई है कि भूल-चूक की कोई परवाह नहीं। इसीमें शशांक को बड़ा आराम और प्रसन्नता है। उसे लगता है जैसे कोई 'पिकनिक' चल रहा हो। और जब देखता है कि ऊर्मि किसी बात से चिन्तित नहीं, दुःखित नहीं, लज्जित नहीं, सदा उत्साहित रहती है तो शशांक के मन से उसका गुह भार और कर्म की पीड़ा हलकी हो जाती है। काम पूरा होने, यहां तक कि न होने पर भी, शशांक का मन घर लौट आने के लिए उत्सुक हो उठता है।

यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि ऊर्मि काम-काज में होशियार नहीं है। फिर भी ध्यान देने पर एक बात दिखाई देती है, काम से न सही स्वयं अपने को देकर उसने इस घर के बहुत दिनों से चले आते हुए एक बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है। वह अभाव ठीक-ठीक क्या है, इसे निर्दिष्ट भाषा में बताया नहीं जा सकता। फिर भी शशांक जब घर आता है तब यहां की हवा में छुट्टी की हिलोर अनुभव करता है। छुट्टी का आनन्द केवल घर की सेवा में नहीं है, उसका एक रसमय स्वरूप है। वस्तुतः ऊर्मि के अपनी छुट्टी के आनन्द ने इस घर की समस्त घून्यता को पूर्ण कर दिया है, दिन-रात को चंचल कर रखा है। वह निरन्तर की चंचलता कर्म से थके हुए शशांक के रक्त को उत्तेजित करती है। दूसरी ओर शशांक ऊर्मि को पाकर आनन्दित है, यह प्रत्यक्ष उपलब्धि ऊर्मि को भी आनन्द देती है। इतने दिनों तक वही सुख ऊर्मि को नहीं मिला। उसके होने-

मात्र से किसीको खुशी हो सकती है, यह बात बहुत दिनों तक उससे छिपी-दबी पड़ी रही, जिससे उसके वास्तविक गौरव की हानि हो रही थी।

शशांक का खाना-पीना उसके अभ्यास के अनुसार चल रहा है कि नहीं, ठीक समय पर ठीक वस्तु उसे मिलती है या नहीं मिलती, यह बात इस घर के मालिक के मन में आज गीण हो गई है; वह वैसे ही, अकारण प्रसन्न है। शर्मिला से कहता है, “तुम छोटी-मोटी बातों के लिए इतनी चिन्ता क्यों करती हो? अभ्यास में ज़रा हेर-फेर होने से असुविधा थोड़े ही होती है, वह तो उलटा अच्छा ही लगता है।”

शशांक का मन इस समय ज्वार-भाटावाली नदी के समान हो रहा है। काम-काज की वह तेज़ी कुछ कम हो गई है। ज़रा-सी देर से या बाधा से मुश्किल होगी और नुकसान हो जाएगा, अब सदा यह बात उसके मुंह से सुनाई नहीं पड़ती। ऐसी कोई बात निकलते ही शर्मि उसके गांभीर्य को भंग कर देती है, हंस पड़ती है। उसके मुंह पर गंभीरता के भाव देखकर कहती है, “जान पड़ता है आज आपका वह हौआ आया था, वही हरी पगड़ीवाला देशी दलाल? डरा गया है क्या?”

शशांक विस्मित होकर कहता, “तुम उसे कैसे जान गईं?”

“मैं उसे खूब पहचानती हूँ। आप उस दिन बाहर गए थे, वह अकेला वरामदे में बैठा हुआ था। मैंने ही उसे तरह-तरह की बातों में भुला रखा था। वीकानेर का रहनेवाला है, उसकी स्त्री मच्छर-दानी में आग लग जाने से मर गई है, अब दूसरे व्याह के फेर में है।”

“तब तो वह हिसाब लगाकर ऐसे ही समय से आया करेगा जब मैं घर से बाहर चला जाया करूँगा; जब तक स्त्री का ठिकाना नहीं होता तब तक उसका सपना यहां जमेगा।”

“आप मुझे बता जाया कीजिए कि उससे क्या काम निकालना है। उसके भाव देखकर जान पड़ता है, मैं उससे काम निकाल सकूंगी।”

आजकल शशांक के लाभ के खाते में निन्यानवे के ऊपर जो बड़े अंक गतिशील अवस्था में हैं, बीच-बीच में यदि उनकी गति रुक जाती है, तो भी उसके कारण पहले की तरह भुंभला उठनेवाली चंचलता उसमें दिखाई नहीं पड़ती। शाम के समय सुनने के लिए रेडियो के पास बैठने का उत्साह शशांक मजूमदार में अब तक नहीं दिखाई पड़ा था। आजकल जब ऊर्मि उसे वहां खींच लाती है तब यह बात न उसे बुरी लगती है, न उसमें समय व्यर्थ जाता मालूम पड़ता है। हवाई-जहाज की उड़ान देखने के लिए एक दिन भोर में उसे दमदम तक जाना पड़ा। उसका मुख्य आकर्षण वैज्ञानिक कौतूहल नहीं था। श्रीर न्यूमार्केट में शॉपिंग करने जाने का उसके लिए यह पहला ही अनुभव था। इससे पहले बीच-बीच में मांस-मछली, फल-फूल, शाक-भाजी खरीदने के लिए शर्मिला ही वहां जाती थी। वह जानती थी कि यह काम खास तौर से उसीके विभाग का है। इस काम में शशांक उसे सहयोग देगा, ऐसी बात कभी उसके मन में नहीं आई, उसने कभी इच्छा भी नहीं की। किन्तु ऊर्मि तो खरीदने नहीं जाती, केवल चीजों को उलटने-पलटने जाती है, चीजें उठाती और दाम पूछकर रह जाती है। शशांक यदि वह चीज खरीद देना चाहता है तो उसके रुपयों का बटुआ छीनकर अपने बटुए में रख लेती है।

शशांक के काम-काज के दर्द को ऊर्मि विलकुल नहीं समझती। कभी-कभी अत्यन्त वाधा उपस्थित करने पर वह शशांक से तिरस्कृत भी हुई है किन्तु उसका फल इतना शोकजनक हुआ है कि उसके दुःख को दूर करने के लिए शशांक को अपना पूरा समय लगाना पड़ा है। एक ओर ऊर्मि की आंखों में वाष्प-संचार, दूसरी ओर अपरिहार्य काम की जल्दी। ऐसे संकट में पड़कर अन्त में घर के बाहरी कमरे में ही बैठकर सब काम-काज निबटाना पड़ता है। किन्तु अपराह्न के बाद वहां रहना भी दुस्सह हो जाता है। जिस दिन किसी कारण से ज्यादा देरी हो जाती है, उस दिन ऊर्मि

रुठकर ऐसा दुर्भेद्य मौन साध लेती है कि उसे मनाना मुश्किल हो जाता है। ऊर्मि के रुद्ध आंसुओं के कोहरे में छिपे अभिमान का अनुभव कर भीतर ही भीतर शशांक को आनन्द होता है। वह भलेमानस की तरह कहता है, "ऊर्मि ! वातचीत न करने और मौन रहने के इस सत्याग्रह की रक्षा करना ही तुम्हारे लिए उचित है, परन्तु दुहाई है धर्म की, न खेलने का प्रण तो तुमने किया नहीं था। उसके बाद टेनिस हाथ में लेकर दोनों चल पड़ते। खेल में शशांक विजय के निकट पहुंचकर भी अपनी इच्छा से हार जाता। फिर दूसरे दिन सुबह उठकर नष्ट हुए समय के लिए पश्चात्ताप करता।

किसी छुट्टी के दिन दोपहरी के पश्चात् जब शशांक दाहिने हाथ में लाल-नीली पेंसिल लेकर बायें हाथ की उंगलियां अकारण अपने बालों में इधर-उधर फेरता आफिस की डेस्क पर बैठा 'किसी कठिन काम में लगा होता तो ऊर्मि आकर कहती, "मैंने आपके उस दलाल से तय किया है कि वह आज हमें पारसनाथ का मन्दिर दिखाने ले जाएगा। जीजाजी, आप भी हमारे साथ चलिए।"

शशांक विनती करके कहता, "नहीं भाई, आज नहीं। इस समय मेरा उठना ठीक नहीं होगा।"

काम के गुरुत्व से ऊर्मि को ज़रा भी डर नहीं लगता। कहती है, "अबला रमणी को अरक्षित अवस्था में हरी पगड़ीवाले के हाथ दे देने में तुम्हें ज़रा भी संकोच नहीं। यही है तुम्हारी 'शिवलरी'?"

अन्त में उसकी जबरदस्ती से शशांक काम छोड़कर उसे मोटर हांककर ले जाता है। इस प्रकार के उत्पात की खबर पाकर शर्मिला बहुत विगड़ती है क्योंकि उसके मत से पुरुषों के साधना-क्षेत्र में स्त्रियों का अनधिकार प्रवेश किसी प्रकार क्षम्य नहीं। शर्मिला ऊर्मि को बराबर बच्ची ही समझती आई है। आज भी वही धारणा उसके मन में बनी हुई है। भले वह बच्ची हो पर आफिस कोई बच्चों के खेलने की जगह नहीं है। इसलिए ऊर्मि को बुलाकर कठोरतापूर्वक

उसका काफी तिरस्कार करती है। उस तिरस्कार का निश्चित फल भी हो सकता था किन्तु पत्नी का क्रुद्ध कण्ठ-स्वर सुनकर शशांक स्वयं दरवाजे के बाहर आ खड़ा होता और ऊर्मि को आश्वासन देकर आंख का इशारा करता रहता है। ताश की गड्डी दिखाकर इशारा करता जिसका भाव यह होता कि 'चली आओ, ऑफिस के कमरे में बैठकर तुम्हें 'पोंकर' का खेल सिखाएंगे।' उसके पास खेलने का समय विलकुल न रहता, खेलने की बात भी मन में लाने का अवसर और अभिप्राय उसका न होता। पर जीजी की कठोर भर्त्सना से ऊर्मि के मन में चोट लगी होगी, इसलिए ऐसा करता है। वह स्वयं अनुनय, यहां तक कि किंचित् तिरस्कार करके भी, ऊर्मि को अपने काम-काज के क्षेत्र से हटा देना चाहता किन्तु इस बात को लेकर धर्मिला ऊर्मि पर शासन करे, इसे सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन हो जाता है।

शर्मिला शशांक को बुलाकर कहती, "तुम उसके प्रत्येक हठ को इस तरह वर्दाश्त करते रहोगे तो कैसे काम चलेगा ! समय-असमय नहीं देखने से तुम्हारे काम-काज को नुकसान पहुंचता है !"

शशांक कहता, "अभी बच्ची है। यहां उसका कोई संगी नहीं है, जरा हंसी-खेल करने नहीं पाएगी तो जीती बचेगी कैसे ?"

यह तो हुआ नाना प्रकार का वचपन। पर उधर शशांक जब किसी मकान का नक्शा लेकर बैठता तो वह उसके पास पहुंचकर कुर्सी खींचकर बैठ जाती और कहती, "मुझे समझा दो।" समझाने पर सरलता से समझ जाती, गणित के नियम उसे जटिल न मालूम पड़ते। शशांक बहुत खुश होकर उसे 'प्राव्लम' देता; वह उसे हल करके ले आती। जूट कम्पनी के स्टीमलांच पर शशांक काम देखने जाता, जब वह ज़िद करती कि मैं भी चलूंगी। सिर्फ साथ जाती ही नहीं, नाप-जोख के हिसाब के विषय में तर्क करती; शशांक पुलकित हो उठता। भरपूर कविता से इसमें रस अधिक है। इसलिए जब चेम्बर का काम घर ले आता है तो उसको लेकर उसके मन में आशांका नहीं

रहती । लाइन खींचकर नक्शा बनाने के काम में उसे एक साथी मिल गया है । ऊर्मि को पास बिठाकर समझाता हुआ काम करता है । काम तेजी से आगे नहीं बढ़ पाता परन्तु समय की दीर्घता सार्थक मालूम होती है ।

इस प्रकार की बातों से शर्मिला को बड़ा धक्का लगता है । ऊर्मि के लड़कपन को भी वह समझती है, उसके गृहिणीत्व की त्रुटियों को भी वह स्नेहपूर्वक सह लेती है, परन्तु व्यवसाय के क्षेत्र में पति के साथ स्त्री-बुद्धि के दूरत्व को जब स्वयं अपने लिए अनिवार्य मान लिया है तब वहां ऊर्मि की बेरोकटोक गतिविधि उसे कैसे अच्छी लग सकती है ? यह तो बिलकुल होड़ की बात है । अपनी-अपनी सीमा मानकर चलने को ही गीता ने स्वधर्म कहा है ।

मन ही मन बड़ी अधीर होकर एक दिन ऊर्मि से पूछा, "ऊर्मि ! क्या तुम्हें यह सब लेखा-जोखा, धांकड़े, ट्रेस करना सचमुच अच्छा लगता है ?"

"हां जीजी ! हमें बहुत अच्छा लगता है ।"

शर्मिला ने अविश्वास के स्वर में कहा, "हां रे लगता है अच्छा ! उन्हें खुश करने के लिए यह प्रकट किया करती है कि अच्छा लगता है ।"

नहीं है तो यही सही । शर्मिला के मन में भी तो यही रहा है कि ठीक समय पर खिला-पहनाकर और सेवा-जतन करके ऊर्मि शशांक को प्रसन्न रखे । किन्तु इस प्रकार की खुशी उसकी अपनी खुशी के साथ, न जाने क्यों मेल नहीं खा रही है ।

शशांक को बार-बार बुलाकर कहती, "उसे लेकर तुम समय क्यों नष्ट करते हो ? इससे तुम्हारे काम में नुकसान होता है । वह अभी बालिका है, यह सब क्या जाने !"

शशांक कहता है, "वह मुझसे कम नहीं समझती ।"

वह समझता है कि ऊर्मि की इस प्रशंसा से उसकी जीजी को आनन्द होता होगा । नासमझ !

अपने कान के गौरव में शशांक ने जब अपनी पत्नी की ओर ने

ध्यान शिथिल कर लिया था तब शर्मिलाने उसे देवसी के साथ मान लिया हो, ऐसी बात नहीं थी; उसने इसमें गर्व का ही अनुभव किया था। इसलिए उसने आजकल अपने सेवापरायण हृदय के दावे को बहुत कम कर लिया है। वह कहती है कि पुरुष मानुष राजा की भाँति है; उसे दुस्साध्य कर्म के अधिकार को सदा ही प्रशस्त करते रहना होगा नहीं तो वह स्त्रियों से भी नीचा हो जाएगा। क्योंकि स्त्रियाँ अपने स्वाभाविक माधुर्य और प्रेम के जन्मजात ऐश्वर्य द्वारा ही घर-गृहस्थी में प्रतिदिन अपने स्थान को सहज ही सार्थक करती हैं। किंतु पुरुष अपने को सार्थक करता है प्रतिदिन के संघर्ष एवं युद्ध के द्वारा। किसी जमाने में राजा लोग बिना प्रयोजन के ही राज्य का विस्तार करने के लिए निकलते थे। ऐसा वे राज्य लोभ के लिए नहीं, वरन् पौरुष के गौरव की नये सिरों से प्रतिष्ठा करने के लिए ही करते थे। इस गौरव में स्त्रियों को बाधा नहीं देनी चाहिए। शर्मिला ने स्वयं कभी बाधा नहीं दी। स्वेच्छापूर्वक उसने शशांक के लिए अपना उद्देश्य-साधन करने का रास्ता छोड़ दिया है। किसी समय उसने उसे अपने सेवा-जाल में उलझा लिया था; मन में बहुत दुःख पाने पर भी उस जाल को धीरे-धीरे समेट रही है। अब भी वह काफी सेवा करती है पर वह सेवा अदृश्य, पर्दे में छिपी, ही रह पाती है।

हाय रे, उसके स्वामी का यह कैसा पराभव दिन-दिन प्रकट होता जा रहा है! रोगशय्या पर से वह सब कुछ देख नहीं पाती, किन्तु यथेष्ट आभास पा जाती है। वह शशांक का मुख देखते ही समझ जाती है कि आजकल सदा ही वे कैसे एक आवेश में रहते हैं। जरा-सी लड़की ने आकर इन चन्द दिनों में ही इतनी उच्च साधना के आसन से ऐसे कर्मठ पुरुष को विचलित कर दिया है। आज शर्मिला को उसके स्वामी की यह अश्रद्धेयता उसकी वीर्यारी की पीड़ा से भी ज्यादा दुःख दे रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि शशांक के आहार-विहार और वेशभूषा

की पहले से चली आती हुई व्यवस्था में अनेक प्रकार की त्रुटियां हो रही हैं। जो चीजें उसे ज्यादा अच्छी लगती हैं, खाने के समय दिखाई पड़ता है कि वही उपस्थित नहीं हैं। उसकी कंफियत मिल जाती है पर इस घर में कंफियत को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया गया। ये सब असावधानताएं पहले कठोर दण्ड के योग्य समझी जाती थीं। और आज उसी कायदे-कानून से वंधे घर में इतना बड़ा युगान्तर हो रहा है कि बड़ी से बड़ी गलतियां प्रहसन की मनोविनोद-सामग्री बनकर रह जाती हैं। इसका दोष किसे दिया जाए? जीजी के निर्देश के अनुसार ऊर्मि जब रसोईघर में बेंत के मूड़े पर बैठी, पाक-प्रणाली के संचालन में लगी होती और साथ-साथ पाचिका महाराजिन के पूर्व-जीवन की कहानी भी चलती रहती तब शशांक अकस्मात् आकर कहता, "अभी यह सब रहने दो।"

"क्यों क्या करना है?"

"इस समय मुझे छुट्टी है। चलो विक्टोरिया मेमोरियल विल्डिंग देख आएं। उसका गर्व देखकर हंसी क्यों आती है, यह भी तुम्हें सगम्भा दूंगा।"

इतने बड़े प्रलोभन से ऊर्मि का मन भी कर्तव्य की उपेक्षा करने के लिए तत्क्षणा चंचल हो उठता है। शर्मिला जानती है कि रसोईघर से उसकी सहीदरा के हट जाने के कारण भोजन की श्रेष्ठता में कोई कमी नहीं आएगी तब भी स्निग्ध हृदय से शशांक के आराम को कुछ न कुछ बढ़ा तो वह सकती ही है, यह भाव मन में बना रहता। किन्तु आराम की बात करने से फायदा ही क्या है, जबकि रोज ही स्पष्ट दिखाई देता है, कि आराम का वह महत्त्व नहीं रह गया है और स्वामी इसी स्थिति में खुश हैं।

इन बातों के कारण शर्मिला से मन में अशांति बढ़ गई। रोग-शय्या पर इस ओर से उस ओर बार-बार करवट बदलती हुई कहती, 'मरने के पहले यह बात समझ में आई कि मैंने उनके लिए सब कुछ किया, केवल खुश न कर सकी। सोचा था कि ऊर्मि

ही देख पाऊगा किन्तु वह ता म नहीं हूँ ; वह तो एक विलकुल ही जुदा लड़की है ।' खिड़की के बाहर टकटकी लगाए सोचती, 'मेरी जगह वह नहीं ले सकती और उसकी जगह मैं नहीं ले सकती । मेरे चले जाने से क्षति होगी किन्तु उसके चले जाने से तो सब शून्य हो जाएगा, सब कुछ चला जाएगा ।'

सोचते-सोचते एकाएक याद आ गई कि ठंड के दिन आ रहे हैं, गर्म कपड़ों को धूप में डालना चाहिए । उस समय ऊर्मि शशांक के साथ पिगपांग खेल रही थी । उसे बुला भेजा ।

वोली, "ऊर्मि ! यह ले चावी । गर्म कपड़े निकलवाकर छत पर धूप में डलवा दे ।"

ऊर्मि ने आलमारी में चावी लगाई ही थी कि इतने में शशांक ने आकर कहा, "यह सब पीछे होता रहेगा, अभी बहुत समय है । चलो, खेल पूरा हो जाने दो ।"

"किन्तु जीजी....."

"अच्छा, जीजी से मैं छुट्टी लिए आता हूँ ।"

जीजी ने छुट्टी दे दी, साथ ही उसके मुंह से एक दीर्घ निश्वास निकल पड़ा ।

दासी को बुलाकर कहा, "मेरे माथे पर जरा ठंडे पानी की पट्टी तो रख दे ।"

बहुत दिनों तक बन्धन में रहने के बाद एकाएक उससे मुक्ति पाकर यद्यपि ऊर्मि आत्मविस्मृत हो गई थी, अपने को भूल गई थी, फिर भी कभी-कभी अकस्मात् उसे अपने जीवन की कठिन जिम्मेदारी याद आ जाती । वह तो स्वाधीन नहीं है, वह तो अपने व्रत के साथ बंधी हुई है । उस व्रत ने उसे जिस एक विशेष व्यक्ति के साथ बांध रखा है, उसीका अनुशासन उसके ऊपर है । उसके दैनिक कर्तव्य के विधिनियम को उसीने तय कर दिया है । उसके जीवन पर सदैव के लिए उसीका अधिकार हो चुका है, इस बात को भी ऊर्मि किसी प्रकार

अस्वीकार नहीं कर सकती । जब नीरद उपस्थित था तब स्वीकार करना सरल था ; वह मन में बल का अनुभव करती थी । इस समय उसकी इच्छा बिलकुल ही विमुख हो गई है । उधर कर्तव्य-बुद्धि भी चोट करती है । कर्तव्य-बुद्धि के अत्याचार से ही मन और खराब हो गया है । अपना अपराध क्षमा करना कठिन हो जाने से ही अपराध को प्रश्रय मिल गया है । अपनी वेदना पर अफीम का लेप चढ़ाने, उसे भूलने के लिए ही शशांक के साथ हंसी-देल और आमोद-प्रमोद में सदा अपने को भुलाए रखने की चेष्टा करती है । कहती है, 'जब समय आएगा तब अपने-आप ही सब ठीक हो जाएगा ; अभी जब तक छुट्टी है, उन सब बातों को रहने दो ।' फिर किसी-किसी दिन एकाएक अपने मस्तिष्क को भ्रमभोरकर उठ खड़ी होती और काफी-कित्ताव ट्रंक से बाहर निकालकर उसमें मन लगाने की कोशिश करती । तब फिर शशांक की पारी आ जाती । पुस्तकें इत्यादि छीनकर वह बक्स में बन्द कर देता और उसी बक्स पर स्वयं बैठ जाता । ऊर्मि कहती, "शशांक दा, यह बड़ा अन्याय है । मेरा समय नष्ट न कीजिए ।"

शशांक कहता, "तुम्हारा समय नष्ट करने में मुझे अपना समय भी तो नष्ट करना पड़ता है । इसलिए हिसाब चुकता हो जाता है ।"

इसके बाद थोड़ी देर तक भीन-भ्रमण करके घन्ट में ऊर्मि हार मान लेती है । यह हार उसे बिलकुल बुरी भी नहीं लगती । इस तरह की बाधाओं के होते भी कर्तव्य-बुद्धि की पीड़ा पांच-छः दिन तक चलती रहती, फिर उसका जोर कम हो जाता । कहती, "जीजा-जी ! मुझे दुर्बल न समझिएगा । मैंने मन के भीतर प्रतिज्ञा को दृढ़ कर रखा है ।"

"अर्थात् ?"

"अर्थात् यहां की डिग्री लेकर, डाक्टरी सीखने यूरोप जाऊंगी ।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद अस्पताल खोलकर उसका ना

“और किसका भार लगी? वह जो नीरद मुकर्जी नाम का एक इनसफरेवल^१.....”

शशांक का मुख हाथ से बंद करके ऊर्मि कहती, “चुप रहिए। ऐसी बातें करने तो आपसे मेरा सदा के लिए भगड़ा हो जाएगा।”

अपने को खूब कठोर करके ऊर्मि मन में कहती, ‘मुझे सच्चा बनना पड़ेगा, सच्चा बनना ही पड़ेगा! नीरद के साथ उसके इस सम्बन्ध को वावूजी स्वयं स्थिर कर गए हैं। उसके प्रति सच्चा न रहना मेरे लिए असतीत्व है।’

किन्तु मुश्किल यह है कि दूसरी तरफ से उसे कोई शक्ति नहीं प्राप्त होती। ऊर्मि एक ऐसा पौधा है जिसने मिट्टी को तो पकड़ रखा है परन्तु आकाश के आलोक से वंचित है; उसके पत्ते पीले पड़ गए हैं। किसी-किसी समय अधीर हो उठती है और मन ही मन सोचती है, ‘यह मनुष्य चिट्ठी जैसी एक चिट्ठी भी नहीं लिख पाता!’

ऊर्मि ने बहुत दिनों तक कान्वेण्ट में शिक्षा पाई है। और कुछ हो या न हो, अंग्रेजी उसकी पक्की है। यह बात नीरद को मालूम थी। इसीलिए उसका प्रण था कि वह अंग्रेजी लिखकर ऊर्मि को अभिभूत कर लेगा। बंगला में चिट्ठी लिखता तो आफत से बच जाता किन्तु अपने वारे में बेचारे को मालूम ही नहीं था कि अंग्रेजी में वह कोरा है। भारी-भारी शब्द जुटाकर, पुस्तकों से लम्बे-लम्बे उद्धरण लेकर वह अपनी भाषा को ऐसी बोझिल बना देता था जैसे बोझ से लदी कोई बैलगाड़ी हो। ऊर्मि को हंसी आती किन्तु हंसने में उसे लाज लगती और वह अपना तिरस्कार करके कहती, ‘बंगाली की अंग्रेजी में गलती हो तो उसके लिए दोष देना स्तविश—हिमाकत—है।’

देश में रहते हुए जब नीरद ने उसे बार-बार सदुपदेश दिए हैं तब वे उसके रंग-ढंग से गंभीर हो उठे हैं और उसे उनमें गौरव का

अनुभव हुआ है। तब वह गितना जान से नृनती थी उससे ज्यादा बजान अपने अनुमान से बढ़ा लिया करती थी। किन्तु चिट्ठी में अनुमान-अन्दाज के लिए जगह ही नहीं रहती। कमर बांधकर सामने आने-वाली भारी-भारी बातें हलकी हो जाती हैं, कहने को जब कोई बात नहीं रहती तब मोटी-मोटी, भारी-भरकम आवाज ही पकड़ ली जाती है।

पास रहने पर नीरद के जित भाव को उसने सहन कर लिया था वही दूर रहने पर उसे बहुत ज्यादा खटकने लगा। बेचारा हंसना तो बिलकुल जानता ही नहीं! चिट्ठी में यह अभाव सबसे अधिक प्रकट हो जाता है। तब शशांक के साथ नीरद की तुलना की बात उसके मन में अपने-आप उठ खड़ी होती है।

तुलना का एक कारण उस दिन एकाएक सामने आ गया। वह कोई कपड़ा खोज रही थी कि वक्त के नीचेवाले हिस्से में उसे ऊत की बुनी एक अचूरी जुराब मिल गई। चार साल पहले की बात याद आ गई। तब हेमन्त जीता था। वे सब एकसाथ दार्जिलिंग गए हुए थे। आनंद-अनंद की कोई सीमा नहीं थी। हेमन्त और शशांक दोनों ने मिलकर हंसी-मजाक का भरना ही प्रवाहित कर दिया था। ऊर्मि ने अपनी एक मीठी से बुनाई का नया-नया काम सीखा था। अन्तर्दिन पर दादा को भेंट देने के लिए वह एक जोड़ा जुराब बुन रही थी। इस बात पर उसकी हंसी उड़ते हुए शशांक ने कहा था, "अपने दादा को और जो कुछ चाहे दो पर झूते (जुराब) न देना। भगवान मनु ने कहा है कि ऐसा करने से गुरुजनों के प्रति अज्ञान होता है।" ऊर्मि ने उसी समय कटाक्ष करते हुए कहा, "तब भगवान मनु ने किन्हीं ऊत उनका प्रयोग करने को कहा है।"

शशांक ने गंभीर मुंह बनाकर कहा, "कितना ही बुरा-बुरा साधितार है वहनोई का। बहुत दिनों से हमारा बचन बचने ही नहीं मिलता वह और भारी हो गया है।"

"बाद तो नहीं पड़ता (कि शशांक कोई बुरा-बुरा है)

“याद पढ़ने की बात ही नहीं है। तब तुम विलकुल नाबालिग थीं। इसीलिए तुम्हारी जीजी के साथ शुभ लग्न में जिस दिन इस सौभाग्यवान का विवाह हुआ उस दिन सुहागरात का कर्णधार-पद तुम धारण नहीं कर सकी थीं। आज उन कोमल कर-पल्लवों से अरचित कनेठी ने ही इन कर-पल्लवों से रचित जुरावों के जोड़े का रूप धारण किया है। इसीलिए पहले से ही कहे रखता हूँ कि इन्हें पाने का मेरा दावा है।”

वह दावा पूरा नहीं हुआ। वे जुरावें यथासमय प्रणामी के रूप में दादा के चरणों में चढ़ा दी गई थीं। इसके कुछ दिनों बाद शशांक की एक चिट्ठी ऊर्मि को मिली। उसे पाकर वह खूब हँसी थी। वह चिट्ठी आज भी उसके बक्स में रखी है। आज वह फिर उसे खोलकर पढ़ने लगी :

“कल तुम तो चली गईं। तुम्हारी याद अभी पुराज्ञी भी न हो पाई थी कि तुम्हारे नाम को लेकर एक कलंक लगाया जाने लगा है। उसे तुमसे छिपाऊँ तो अकर्तव्य का भागी बनूँगा।

“मेरे पांव में एक जोड़ा ताल-तल्ले की चट्टी बहुतों ने देखी है। इससे भी ज्यादा ध्यान से देखा है उसके छिद्रों को भेदकर मेघ-चन्द्रमाला सहस्र मेरी चरण-नख-पंक्ति को (देखो भारतचन्द्र का ‘अन्नदामंगल’। उपमा की सच्चाई के वारे में सन्देह पैदा हो तो अपनी जीजी से इसकी मीमांसा करा सकती हो।) जिस समय आज सुबह हमारे आफिस के वृन्दावन नन्दी ने आकर सपादुक मेरे चरणों का स्पर्श करके प्रणाम किया तब मेरी पदमर्यादा की जो विदीर्णता प्रकट हुई थी उसके अगीरव से मेरा मन आन्दोलित होने लगा। नौकर से मैंने पूछा, “महेश, मेरी दूसरी चट्टी की जोड़ी किस अनधिकारी चरणों में गतिमान हो रही है?” उसने माथा खुजाते हुए कहा, “उस घर की ऊर्मि मौसी आदि के साथ जब आप दार्जिलिंग गए थे, तब चट्टियों के दो जोड़े भी आपके साथ गए थे।

देखा कि शशांक आकिसवाले कमरे में बैठा एकाग्र चित्त से काम कर रहा है। चुपके-चुपके उसके पीछे जाकर उसने उसके मुंह में अच्छी तरह अवीर मल दिया। उसके कागज-पत्र सब रंग उठे। छीन-भपट मच गई। डेस्क पर लाल काली रोशनाई की दवातें थीं। शशांक ने उठकर ऊर्मि की साड़ी पर उंडेल दीं और हाथ से पकड़ उसके आंचल में से अवीर छीनकर मुंह पर मल दिया। फिर तो भाग-दौड़, ठेलम-ठेल, धमाचौकड़ी मच गई। समय बीतता गया; स्नान-ध्यान और भोजन का समय पीछे छूट गया, ऊर्मि की खिलखिलाहट और स्वरोच्छ्वास से सारा मकान मुखरित हो उठा। अन्त में शशांक के बीमार पड़ जाने की आशंका से दूत पर दूत भेजकर शर्मिला ने किसी प्रकार उन्हें निवृत्त किया।

दिन ढल गया। रात हो गई। पुष्पित कदम्ब की चोटी के ऊपर खुले आकाश में पूर्णिमा का चांद उठने लगा। एकाएक फागुन की नदमाती वायु का एक झोंका आया; वाग के सत्र पेड़-पौधे भूम उठे; जमीन पर पड़ती उनकी छायाएं भी इस कार्य में शामिल हो गईं। खिड़की के पास ऊर्मि चुपचाप बैठी हुई है। उसे किसी प्रकार नींद नहीं आ रही है। छाती में रक्त का स्पन्दन शान्त नहीं हुआ है। आम के बीर की गंध से मन भर उठा है। वसन्त में माधवी लता की मज्जा-मज्जा में फूलों के रूप में फूट पड़ने की जो वेदना होती है वही वेदना ऊर्मि की समस्त देह को भीतर ही भीतर मथ रही है। निकट के स्नानागार में जाकर उसने अपना सिर धो लिया, भीगे तौलिए से सारा शरीर पोंछ डाला। फिर बिछीने पर पड़ी करवट बदलती रही; कुछ देर बाद सपना देखती हुई सो गई।

रात तीन बजे उसकी नींद टूट गई। चांद तब खिड़की के सामने नहीं था। कमरे में अंधेरा है, बाहर सुपारा के वृक्षों की गली में प्रकाश और छाया की आंखमिचीनी है। ऊर्मि की छाती फटने लगी, रुलाई उमड़ आई; किसी तरह रोके नहीं सकती। पेट के बल आंघी पड़कर तकिए से मुंह छिपा रोने लगी। यह प्राणों का रोदन है, भाषा में

इसके लिए शब्द नहीं है, अर्थ नहीं है। प्रबन्ध करने पर भी क्या वह बता सकती है कि किस जगह से यह वेदना का ज्वार उसकी देह और मन में उफन उठा है जो अपने साथ दिन के समस्त कार्यों और रात की सुख-भरी नींद को बहाए लिए जा रहा है।

सुबह जब ऊर्मि की नींद टूटी तब कमरे में घुप आ गई थी। सुबह के काम-काज के समय वह अनुपस्थित रही। थकावट के कारण सो गई होगी, यह विचारकर शर्मिला ने उसे क्षमा कर दिया। पर न जाने किस अनुपात से ऊर्मि आज उदास है, न जाने क्यों उसके मन में यह त्रात उठती है कि वह हारती जा रही है। जाकर जीजी से बोली, “जीजी, मैं तुम्हारा कोई काम तो कर नहीं पाती हूँ, कहीं तो घर लौट जाऊँ।”

आज शर्मिला नहीं कह सकी कि ‘अभी मत जा।’ बोली, “अच्छा, तू जा। तेरी पढ़ाई-लिखाई का नुकसान होता होगा। बीच-बीच में जब सगय मिले, देख जाया करना।”

उस समय शशांक काम से बाहर गया हुआ था। उसी बीच उसी दिन ऊर्मि अपने घर चली गई।

शशांक उस दिन ऊर्मि को देने के लिए यांत्रिक चित्र बनाने का एक सैट खरीदकर घर लौटा। विचार था कि उसे यह विद्या भी सिखाएगा। लौटने पर जब उसे न देखा तब शर्मिला के कमरे में आकर पूछा, “ऊर्मि कहां गई?”

शर्मिला ने कहा, “यहां उसके पढ़ने-लिखने में असुविधा होती है, यह कहकर वह अपने घर चली गई।”

“कुछ दिन असुविधा होगी, यह जानकर ही तो वह यहां आई थी। असुविधा की बात एकाएक आज ही कैसे उठ खड़ी हुई?”

बात के लहजे से शर्मिला समझ गई कि शशांक को उसी पर सन्देह है। पर उस वारे में व्यर्थ कोई तर्क न करके कहा, “मेरा नाम लेकर तुम उसे बुला लाओ, वह कोई आपत्ति न करेगी।”

ऊर्मि ने घर लौटकर देखा कि बहुत दिनों बाद विल

काम तो वही है, फिर चाहे भारतवर्ष में हो या यूरोप में । राजाराम चाबू जिस काम के लिए धन देना चाहते थे उसका कुछ अंश यहां खर्च किया जाए तो अन्याय न होगा । मृत व्यक्ति के प्रति सम्मान प्रकट करना ही होगा ।”

शशांक ने कहा, “इस जीवित व्यक्ति को थोड़ा-बहुत दे-देकर यदि तुम उसे यूरोप में ही अधिक समय तक रहने दे सको तो बुरा न होगा । भय है कि रुपया बंद कर देने पर जब भूख से मरने लगेगा तो यहां दीड़ा चला आएगा ।”

ऊर्मि ने हंसकर कहा, “यदि आपके मन में ऐसा भय हो तो आप ही रुपये दे दें, मैं तो एक पैसा भी नहीं दूंगी ।”

शशांक बोला, “फिर तो मन बदल नहीं जाएगा ? मानिनी का अभिमान अटल तो रहेगा ?”

“बदल भी जाए तो उससे आपका क्या बनता-बिगड़ता है ?”

“सवाल का सच्चा उत्तर देने पर अहंकार बढ़ जाएगा, इसलिए तुम्हारे हित के लिए चुप ही रहता हूं । किन्तु सोचता हूं इस आदमी के जबड़े तो साधारण नहीं जान पड़ते ।”

ऊर्मि के मन से एक बड़ा भार, बहुत दिनों से चला आ रहा भार उतर गया । मुक्ति के आनन्द में वह क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रही है । उसने नीरद की लिखी हुई कर्तव्य-सूची फाड़ फेंकी । गली में एक भिक्षुक खड़ा भिक्षा मांग रहा था, अंगूठी उंगली से निकालकर खिड़की में से उसकी ओर फेंक दी ।

पूछने लगी, “यह जो मोटी-मोटी किताबें हैं जिनमें पेंसिल से महत्त्वपूर्ण अंशों पर निशान लगे हुए हैं इन्हें कोई ‘हाँकर’ खरीद सकता है ?”

“जरा सुनू तो कि अगर न खरीदे तो फिर क्या होगा ?”

“इनमें कहीं पुराने जमाने का भूत अपना घर न बना ले और बीच-बीच में आधी रात को तर्जनी उंगली दिखाता मेरे विछीने के पास आकर खड़ा न हो जाया करे ?”

“अगर ऐसा डर है तो मैं हाँकर की बाट न देखकर स्वयं ही उन्हें खरीद लूंगा।”

“खरीदकर आप क्या करेंगे ?”

“हिन्दूशास्त्र के मत से अन्त्येष्टिक्रिया। और यदि तुम्हारे मन को उससे शांति मिले तो गया तक जाने को भी राजी हूँ।”

“नहीं, इतनी ज्यादाती शोभा नहीं देगी।”

“तब अपनी लाइब्रेरी के कोने में पिरामिड बनाके उसमें उन्हें ‘मागी’ करके रख दूंगा।”

“किन्तु आज आप अपने काम पर नहीं जा सकते ?”

“सारे दिन ?”

“हां, सारे दिन।”

“क्या करना होगा ?”

“मोटर करके कहीं चल देना होगा।”

“अपनी जीजी से छुट्टी ले तो आओ।”

“नहीं लौटकर जीजी से कहूंगी और उनकी फटकार सुनूंगी। वह फटकार अच्छी लगेगी।”

“अच्छा, मैं भी तुम्हारी जीजी की फटकार हजम करने को तैयार हूँ, यदि टायर फट जाए तो भी मन में दुःख न कहूंगा। पैतालीस मील प्रति घण्टे की गति से दो-चार आदमियों को दबाकर जेलखाने तक पहुंचने में भी मुझे कोई आपत्ति नहीं किन्तु तीन बार वचन दो कि मोटर की यह रथयात्रा पूरी होने के बाद तुम मेरे मकान पर वापस चलोगी।”

“चलूंगी, चलूंगी, चलूंगी।”

मोटर-यात्रा पूरी करके दोनों भवानीपुर के मकान पर पहुंचे, किन्तु घण्टे में पैतालीस मील का वेग अभी तक खून में रुक नहीं पा रहा है। संसार के समस्त अधिकार, लज्जा और भय इस वेग में

१. मिश्र के उच्च समाधि-स्तंभ २. शव जो विशेष मसालों से तुरकित उन समाधि-स्तंभों के अन्दर रखे हुए हैं।

विलुप्त हो गए हैं ।

कई दिनों तक शशांक का सब काम ठप पड़ा रहा । मन के भीतर ही भीतर वह समझता है कि यह अच्छा नहीं हो रहा है । काम को बहुत बड़ी क्षति भी पहुंच सकती है । रात को विछीने पर पड़ा-पड़ा दुःसंभावनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर देखा करता है किन्तु दूसरे दिन फिर स्वाधिकार-प्रमत्त 'भिवदूत'^१ के यक्ष की शांति हो जाता है । एक बार मदिरा पी लेने पर उसके पश्चात्ताप को ढकने के लिए पुनः पीनी पड़ती है ।

शशांक

कुछ दिन इसी प्रकार बीते । आंखों में नशा छा गया, मन पंक्ति हो उठा ।

अपने को स्पष्ट समझने में ऊर्मि को देर लगी किन्तु एक दिन एका-एक चौंक पड़ी और समझ गई ।

न जाने क्यों मथुरा दादा से ऊर्मि बहुत डरती है और यथासंभव उनसे आंख बचाती रहती है । उस दिन मथुरा बाबू सुबह जीजी के घर आ गए और दोपहर तक रहे ।

उनके जाने के बाद जीजी ने ऊर्मि को बुला भेजा । उनका मुंह कठोर किन्तु शांत था । बोली, "प्रतिदिन उनके काम में विघ्न डालकर तूने क्या किया है, जानती है ?"

ऊर्मि सहम गई । बोली, "क्या हुआ जीजी ?"

जीजी ने कहा, "मथुरा दादा बता गए हैं कि कुछ दिनों से तुम्हारे जीजा ने अपना काम-काज देखना बिलकुल छोड़ दिया है ; जवाहरलाल पर सब भार डाल दिया है और वह दोनों हाथों से मालमता लूट रहा है । बड़े-बड़े गोदामों की छत एकदम चलनी हो गई है । उस दिन की वर्षा में जब माल नष्ट हो गया तब मालूम हुआ । हमारी कम्पनी

१. कालिदास का काव्य जो विरही यज्ञ के संदेश से भरा है ।

का बड़ा नाम है, इसलिए जांच किए बिना ही लोग उसपर विश्वास कर लेते हैं। अब उसकी बड़ी बदनामी हो रही है; गहरा नुकसान हुआ है। मयुरा दादा अलग हो जाएंगे।”

ऊर्मि की छाती धक्-धक् कर उठी, मुंह राख जैसा सफेद हो गया। एक क्षण में विद्युत्-प्रकाश की तरह अपने मन का प्रच्छन्न रहस्य उसके सामने प्रकाशित हो उठा। स्पष्ट समझ गई कि किसी अज्ञात क्षण में उसका मन भीतर ही भीतर उन्मत्त हो उठा था—भले-बुरे का कोई विचार नहीं रह गया। उस समय शशांक का काम ही उसका प्रतिद्वन्द्वी हो गया और उसीके साथ उसकी लड़ाई ठन गई। शशांक को काम से हटाकर सदा अपने पास ही रखने के लिए वह तड़पती रहती थी। कितने ही दिन ऐसी बात हुई है कि शशांक स्नान करने गया है, ऐसे समय लोग काम की बातचीत करने आए हैं परन्तु बिना विचार किए ही ऊर्मि ने नौकर को आदेश दिया है, “कह दो कि इस समय भेंट नहीं हो सकती।”

उसे भय होता कि स्नान करके आते ही शशांक कहीं काम पर न चला जाए। वहां जाकर अगर काम में फंस गया तो मेरा दिन व्यर्थ चला जाएगा। अपने भयानक नशे का सांघातिक चित्र उसकी आंखों के आगे नाच उठा। वह उसी क्षण पछाड़ खाकर जीजी के चरणों पर गिर पड़ी और रुंधे गले से बार-बार कहने लगी, “मारकर निकाल दो अपने घर से मुझे! इसी समय निकाल दो जीजी!”

आज जीजी निश्चिन्त रूप से निश्चय करके बैठे थी कि वह किसी तरह से ऊर्मि को क्षमा न करेगी। पर मन पिघल गया।

धीरे-धीरे ऊर्मि के सिर पर हाथ फेरते-फेरते उनसे कहा, “कोई चिन्ता न कर; जो कुछ हुआ है उसका उपाय किया जाएगा।”

ऊर्मि उठ बैठी। बोली, “जीजी! तुम्हीं क्यों नुकसान भरोगी? मेरे पास भी तो रुपया है।”

शर्मिला बोली, “पागल हो गई है क्या? समझती है, मेरे पास कुछ नहीं है? मयुरा दादा से कह दिया है कि इन सब बातों को लेकर

वे गोलमाल न करें। जो नुकसान हुआ है वह मैं भर दूंगी। और तुमसे कहती हूँ, कि तुम्हारे जीजा को न मालूम होने पाए कि मुझे ये बातें ज्ञात हो गई हैं।”

“माफ़ करो जीजी, मुझे माफ़ करो !...” कहकर ऊर्मि पुनः जीजी के पांव पड़कर अपना सिर पीटने लगी।

शर्मिला ने आंखों से आंसू पोंछते हुए थके स्वर में कहा, “कौन माफ़ करेगा वहिन ? संसार बड़ा जटिल है। जो सोचती हूँ नहीं होता, जिसके लिए प्राण तक अर्पण करना चाहती हूँ, वह भी गड़बड़ हो जाता है।”

अब ऊर्मि अपनी जीजी को एक क्षण के लिए छोड़ना नहीं चाहती। दवादारू देना, नहलाना, खिलाना, सुलाना सब परिचर्या अपने ही हाथ से करती है। अब फिर से पुस्तकें भी पढ़ने लगी है और वह भी जीजी की खाट के पास बैठकर। अब वह अपने ऊपर बिलकुल विश्वास नहीं करती, शशांक पर भी नहीं।

फल यह हुआ कि शशांक बार-बार रोगिणी के कमरे में आने लगा। पुरुष अपनी अंधता के कारण ही समझ नहीं पाता कि उसकी छटपटाहट स्त्री की आंखों में पड़ रही है और ऊर्मि लज्जा से मरी जाती है। शशांक ने आकर मोहनवगान का फुटवाल मैच दिखाने का प्रलोभन दिया; वह व्यर्थ हुआ। समाचार-पत्र में पेंसिल से निशान लगाकर चार्ली चैपलिन के सिनेमा खेल की ओर इशारा किया, उसका भी कुछ फल न निकला। जब ऊर्मि दुर्लभ नहीं थी तब सम्पूर्ण बाधाओं के होते हुए भी शशांक अपने काम-काज की ओर कुछ न कुछ ध्यान देता था, परन्तु अब ऐसा करना उसके लिए बिलकुल असंभव हो गया।

वेचारे के इस निरर्थक निपीड़न से शुरू-शुरू में शर्मिला अपने गहरे दुःख के अन्दर से भी सुख पाती थी। किन्तु क्रमशः देख लिया कि स्वामी की यंत्रणा प्रबल हो उठी है, मुंह सूख गया है, आंखों के नीचे काली रेखा पड़ गई है। खाने के समय ऊर्मि पास नहीं बैठती इसलिए शशांक का खाने-पीने का उत्साह और परिमाण दोनों घटता

जा रहा है, यह उसे देखते ही रामक में आ जाता है। इस घर में आनन्द की जो बाढ़ आ गई थी, वह पूर्णतः समाप्त हो गई, बल्कि इस बाढ़ के पहले जिस सहज ढंग पर जीवन बीतता था वह भी नहीं रह गया।

कोई समय था कि शशांक अपने चेहरे की चर्चा में बिलकुल उदासीन रहता था। नाई से बाल कटवाने में प्रायः मृण्डा हो जाता था, केश-रंजन की आवश्यकता ही न रह जाती थी। शर्मिला इसपर बहुत कुछ कहती परन्तु अन्त में कुछ परिणाम न निकालने से निराश रह जाती। किन्तु इधर जब से ऊर्मि आई, तब से दिखाई पड़ा कि उसकी ऊंची हंसी के साथ की गई संक्षिप्त आपत्ति भी निष्फल नहीं गई। नये संस्करण के केशोद्गम के साथ सिर में मुगंधित तेल डालने की घटना पहली बार हुई। किन्तु इधर फिर वही पुरानी बात होने लगी। केशोद्गति-विधि के प्रति उसका यह अनादर ही उसकी अन्तर्वेदना को प्रकट कर देता है। वह इतनी बढ़ गई है कि उसके द्वार में प्रकट या अप्रकट कोई तीखी हंसी करना संभव नहीं रह गया है। शर्मिला की उत्कंठा से उसका धोभ दूर हो गया है। अब स्वामी के प्रति करुणा और अपने प्रति विवकार का भाव उठकर उसकी छाती को चीर रहा है। इससे बीमारी की पीड़ा भी बढ़ती जा रही है।

किले के मैदान में फौज की लड़ाई का खेल होगा। शशांक उरते-उरते पूछने आया, "ऊर्मि, देखने चलोगी? बैठने के लिए अच्छी जगह ठीक कर रखी है।"

ऊर्मि के कुछ उत्तर देने के पहले ही शर्मिला ने कहा, "जाएगी क्यों नहीं? जरूर जाएगी। जरा बाहर घूम आने के लिए तो वह छटपटा रही है।"

इस प्रकार का सहारा पाकर, दो दिन भी नहीं बीते थे कि पूछने आया, "सकस?"

इस प्रस्ताव से ऊर्मि उत्साहित होती दिखाई पड़ी।

उसके बाद फिर, "बोटनिकल गार्डन?"

पर इसमें एक बाधा आ गई। जीजी को बहुत देर तक अकेले छोड़ने को ऊर्मि तैयार नहीं हुई।

तब उसकी जीजी ने स्वयं शशांक का पक्ष लिया। “देश के राज-मजदूरों के साथ भरी दोपहरी में घूम-घूमकर काम देखते-देखते जो आदमी हैरान हो गया हो, धूल-धक्कड़ में जिसका सारा दिन बीता हो वह अगर ज़रा हवा न खाए तो उसका शरीर टूट जाएगा न।”

इसी एक युक्ति के सहारे स्टीमर पर राजगंज तक घूम आना असंगत नहीं जान पड़ा।

शर्मिला मन ही मन कहती है, “जिसके लिए काम-काज खो देने की चिन्ता उन्हें नहीं है, स्वयं उसका खो जाना वे कैसे सह पाएंगे?”

शशांक से किसी ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा पर चारों ओर से एक अव्यक्त समर्थन उसे मिल रहा था। शशांक ने समझ रखा है कि शर्मिला के मन में कोई विशेष व्यथा नहीं है। उन दोनों को एकत्रित करके उन्हें खुश देखने में ही उसकी खुशी है। साधारण स्त्री के लिए ऐसा करना संभव नहीं हो सकता किन्तु शर्मिला तो असाधारण है।

व शशांक नौकरी करता था तब उसने किसी चित्रकार से शर्मिला का एक रंगीन चित्र बनवाया था। इतने दिनों से वह ‘पोर्टफोलियो’ में ही पड़ा था। उसे निकालकर विलायती दुकान से मूल्यवान फ़ैशन का फ्रेम लगवा लाया और आफिस में जहाँ बैठता था उसके ठीक सामने लगवा दिया। उसके सामने के फूलदान में माली रोज़ फूल लगा जाता है।

एक दिन शशांक वाग में फूले सूर्यमुखी को देखते-देखते ऊर्मि का हाथ दवाकर बोला, “तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। और तुम्हारी जीजी! वे तो देवी हैं। उनपर मेरी जितनी भक्ति है उतनी जीवन में दूसरे किसीके प्रति नहीं है। वे संसार की प्राणी नहीं हैं; वे हमसे बहुत ऊपर हैं।”

जीजी ने बार-बार कहकर ऊर्मि को यह बात स्पष्ट समझा दी

है "कि मुझे बड़ी तसल्ली है कि मेरे न रहने पर भी तुम तो इस घर में रहोगी।" इस घर में और किसी स्त्री के आविर्भाव की कल्पना करना भी शर्मिला के लिए व्यथाजनक है किन्तु शशांक की सेवा-जतन करने-वाली कोई स्त्री न रहेगी, ऐसी दुरवस्था को भी वह मन ही मन नहीं सह सकती। व्यवसाय की बात भी जीजी ने उसे समझाकर कहा है, "अगर उनके प्यार में बाधा पड़ी तो उनका काम-काज सब नष्ट हो जाएगा। उनका मन अगर तृप्त रहा तभी उनके काम-काज में एक व्यवस्था आ पाएगी।"

शशांक का मन उन्मत्त हो उठा है। वह एक ऐसे चन्द्रलोक में है जहां संसार की सब जिम्मेदारियां सुख की नींद में डूब गई हैं। आज-कल रविवार की छुट्टी विताने में उसकी निष्ठा ईसाइयों की निष्ठा के समान दृढ़ हो गई है। एक दिन आकर शर्मिला से कहा, "देखो, जूट मिल के साहवों से उनका स्टीमलांच मिल गया है। आज रविवार की छुट्टी है। सोचता हूं, ऊर्मि को लेकर डायमण्ड हार्बर तक हो आऊं, संध्या के पहले ही लौट आऊंगा।"

शर्मिला की छाती की शिराएं भ्रन्ता उठीं, वेदना से माथे की चमड़ी सिकुड़ गई पर शशांक की आंखों को यह सब नहीं दिखाई पड़ा। शर्मिला ने केवल एक वार पूछा, "खाने-पीने का क्या होगा?"

शशांक बोला, "होटल से सब प्रबन्ध हो गया है।"

जिस जमाने में इन सारी बातों का निश्चय करने का भार शर्मिला पर था उस जमाने में शशांक इनके प्रति उदासीन रहता था। आज सब कुछ उलट-पलट गया है।

ज्योंही शर्मिला ने कहा, "अच्छा, चले जाना," त्योंही एक क्षण भी न ठहरकर शशांक बाहर दौड़ गया। शर्मिला की इच्छा हुई कि फूट-फूटकर रोए। तकिये से मुंह छिपाकर वार-वार कहने लगी, 'अब जीने में क्या धरा है !'

कल रविवार को उनके विवाह की वर्षगांठ है। आज तक इस अनुष्ठान में कभी गड़बड़ी नहीं हुई। इस वार भी स्वामी से कहे

विना, विछीने पर पड़े-पड़े सब तैयारियां की हैं। शशांक ने ब्याह के दिन जो लाल बनारसी 'जोड़' पहना था वही इस दिन पहनता है; इसी प्रकार शर्मिला अपने ब्याह के दिनवाली 'चेली' पहन लेती है। फिर स्वामी के गले में माला पहनाकर उन्हें भोजन के लिए सामने बैठाती है, धूप-बत्ती जला देती है। वगल के कमरे में ग्रामोफोन पर शहनाई बजती रहती है। पिछली सालों में शशांक विना उसे बताए अपने पसंद की कोई न कोई चीज खरीद लाकर उसे ब्रेट में देता रहा है। शर्मिला ने समझा था कि वे इस बार भी जरूर कोई चीज देंगे; कल तो मालूम हो ही जाएगा।

आज वह अब कुछ और सहन करने में असमर्थ है। इस समय जब घर में कोई नहीं है तब बार-बार उसके मुंह से शब्द निकलते हैं, 'झूठा, झूठा, झूठा ! इस खेल से क्या लाभ !'

रात नींद नहीं आई। सुबह ही सुनाई पड़ा कि मोटर दरवाजे के पास से निकल गई। शर्मिला सिसकते हुए रो पड़ी और बोली, 'भगवान, तुम झूठे हो !'

अब रोग तेजी से बढ़ने लगा। जिस दिन लक्षण बहुत बुरे दिखाई देने लगे उस दिन शर्मिला ने स्वामी को बुलवाया। सांभ का समय है, कमरे में बड़ी हलकी रोशनी रह गई है। नर्स को संकेत से हट जाने को कहा। स्वामी को पास बिठाया और उनका हाथ पकड़कर बोली, "भगवान से अपने जीवन में जो वरदान मैंने पाया था वह तुम हो। उसके लायक शक्ति उन्होंने मुझे नहीं दी। जितना हो सका, मैंने किया। गलतियां बहुत हुई हैं, उनके लिए मुझे माफ कर दो।"

शशांक कुछ बोलना चाहता था पर उसे रोककर कहा, "नहीं, तुम कुछ न बोलो। ऊर्म को तुम्हारे हाथ दिए जा रही हूं। वह मेरी अपनी बहिन है। उसमें तुम मुझे ही पाओगे, मुझमें तुम्हें जो कुछ

१. वर द्वारा विवाह के समय पहना जानेवाला कुसुम्बी रंग का रेशमी दुपट्टा-धोती २. कन्या द्वारा विवाह के समय पहनी जानेवाली कुसुम्बी रेशमी-साड़ी

नहीं मिला वह भी पाओगे। नहीं, चुप रहो, कुछ मत बोलो। इस मरणकाल में ही मेरा सीभाग्य पूरा हुआ कि मैं तुम्हें सुखी देस सकी।”

नर्स ने बाहर से ही कहा, “डाक्टर साहब आए हैं।”

शर्मिला ने कहा, “भेज दो।”

और बातचीत बन्द हो गई।

शर्मिला के मामा अनेक प्रकार की अशास्त्रीय चिकित्सा का पता लगाने में बड़ा उत्साह रखते थे। इस समय वे एक संन्यासी की सेवा में लगे हुए हैं। जब डाक्टरों ने जवाब दे दिया कि उनके पास अब कुछ करने को नहीं रहा तब उन्होंने हठ किया कि हिमालय से लौटे इन बाबाजी की दवा की परीक्षा एक बार करनी ही होगी। किसी तिब्बती जड़ी का चूर्ण और उसके साथ अधिक मात्रा में दूध का सेवन करना होगा।

शशांक किसी प्रकार के अनाड़ी को सहन करने में असमर्थ था। उसने ऐतराज किया। शर्मिला ने कहा, “और कोई फल तो नहीं निकलेगा परन्तु मामा को सान्त्वना तो मिल ही जाएगी।”

परन्तु देखते-देखते फल निकलने लगा। सांस का कष्ट कम हो गया, रक्तचाप की तकलीफ दूर हो गई।

सात दिन बीते, पंद्रह दिन बीते, शर्मिला उठकर बैठ गई। डाक्टर ने कहा, “मृत्यु के आघात से अपनी रक्षा के लिए कभी-कभी शरीर सन्नद्ध हो जाता है और अन्तिम आघात से अपने को बचा लेता है।”

शर्मिला बच गई।

तब वह सोचने लगी, ‘यह कैसी विपत्ति है; अब क्या करूं? अन्त में मेरा जी उठना ही क्या मरने से अधिक दुःखदाई हो उठेगा?’ उधर ऊर्मि अपनी चीज-वस्तु यहां से जाने के लिए समेट रही है। यहां उसकी पाली समाप्त हो गई।

जीजी ने आकर कहा, “तू जा न सकेगी।”

विना, विछीने पर पड़े-पड़े सब तैयारियां की हैं। शशांक ने व्याह के दिन जो लाल बनारसी 'जोड़' पहना था वही इस दिन पहनता है; इसी प्रकार शर्मिला अपने व्याह के दिनवाली 'चेली' पहन लेती है। फिर स्वामी के गले में माला पहनाकर उन्हें भोजन के लिए सामने बैठाती है, धूप-बत्ती जला देती है। बगल के कमरे में ग्रामोफोन पर शहनाई बजती रहती है। पिछली सालों में शशांक विना उसे बताए अपने पसंद की कोई न कोई चीज खरीद लाकर उसे भेंट में देता रहा है। शर्मिला ने समझा था कि वे इस बार भी जरूर कोई चीज देंगे; कल तो मालूम हो ही जाएगा।

आज वह अब कुछ और सहन करने में असमर्थ है। इस समय जब घर में कोई नहीं है तब बार-बार उसके मुंह से शब्द निकलते हैं, 'भूठा, भूठा, भूठा ! इस खेल से क्या लाभ !'

रात नींद नहीं आई। सुबह ही सुनाई पड़ा कि मोटर दरवाजे के पास से निकल गई। शर्मिला सिसकते हुए रो पड़ी और बोली, 'भगवान, तुम भूठे हो !'

अब रोग तेजी से बढ़ने लगा। जिस दिन लक्षण बहुत बुरे दिखाई देने लगे उस दिन शर्मिला ने स्वामी को बुलवाया। सांभ का समय है, कमरे में बड़ी हलकी रोशनी रह गई है। नर्स को संकेत से हट जाने को कहा। स्वामी को पास बिठाया और उनका हाथ पकड़कर बोली, "भगवान से अपने जीवन में जो वरदान मैंने पाया था वह तुम हो। उसके लायक शक्ति उन्होंने मुझे नहीं दी। जितना हो सका, मैंने किया। गलतियां बहुत हुई हैं, उनके लिए मुझे माफ कर दो।"

शशांक कुछ बोलना चाहता था पर उसे रोककर कहा, "नहीं, तुम कुछ न बोलो। ऊर्मि को तुम्हारे हाथ दिए जा रही हूं। वह मेरी अपनी बहिन है। उसमें तुम मुझे ही पाओगे, मुझमें तुम्हें जो कुछ

१. वर द्वारा विवाह के समय पहना जानेवाला कुसुम्बी रंग का रेशमी दुपट्टा-धोती २. कन्या द्वारा विवाह के समय पहनी जानेवाली कुसुम्बी रेशमी-साड़ी

नहीं मिला वह भी पाओगे । नहीं, चुप रहो, कुछ मत बोलो । इस मरणकाल में ही मेरा सीभाग्य पूरा हुआ कि मैं तुम्हें सुखी देख सकी ।”

नर्स ने बाहर से ही कहा, “डाक्टर साहब आए हैं ।”

शर्मिला ने कहा, “भेज दो ।”

और बातचीत बन्द हो गई ।

शर्मिला के मामा अनेक प्रकार की अशास्त्रीय चिकित्सा का पता लगाने में बड़ा उत्साह रखते थे । इस समय वे एक संन्यासी की सेवा में लगे हुए हैं । जब डाक्टरों ने जवाब दे दिया कि उनके पास अब कुछ करने को नहीं रहा तब उन्होंने हठ किया कि हिमालय से लीटे इन बाबाजी की दवा की परीक्षा एक बार करनी ही होगी । किसी तिब्बती जड़ी का चूर्ण और उसके साथ अधिक मात्रा में दूध का सेवन करना होगा ।

शशांक किसी प्रकार के अनाड़ी को सहन करने में असमर्थ था । उसने ऐतराज किया । शर्मिला ने कहा, “और कोई फल तो नहीं निकलेगा परन्तु मामा को सान्त्वना तो मिल ही जाएगी ।”

परन्तु देखते-देखते फल निकलने लगा । सांस का कण्ठ कम हो गया, रक्तचाप की तकलीफ दूर हो गई ।

सात दिन बीते, पंद्रह दिन बीते, शर्मिला उठकर बैठ गई । डाक्टर ने कहा, “मृत्यु के आघात से अपनी रक्षा के लिए कभी-कभी शरीर सन्नद्ध हो जाता है और अन्तिम आघात से अपने को बचा लेता है ।”

शर्मिला बच गई ।

तब वह सोचने लगी, ‘यह कैसी विपत्ति है ; अब क्या करूं ? अन्त में मेरा जी उठना ही क्या मरने से अधिक दुःखदाई हो उठेगा ?’ उधर ऊर्मि अपनी चीज-वस्तु यहां से जाने के लिए समेट रही है । यहां उसकी पाली समाप्त हो गई ।

जीजी ने आकर कहा, “तू जा न सकेगी ।”

“ऐसा क्या बात है ?”

“हिन्दू-समाज में क्या किसी स्त्री ने वहिन सौत का घर नहीं संभाला है ?”

“छिः !”

“लोकनिन्दा ! लोगों के मुंह की बात ईश्वरीय विधान से भी बढ़ जाएगी ?”

उसने शशांक को बुलाकर कहा, “चलो, हम सब नेपाल चलें । वहां राज-दरवार में तुम्हें काम मिलने की बात भी हुई थी ; प्रयत्न करने से वह मिल जाएगा । वहां, निन्दा की कोई बात भी न उठेगी ।”

शर्मिला ने किसीको दुविधा में रहने का अवसर ही नहीं दिया । जाने की तैयारियां होने लगीं । परन्तु उर्मि अब भी उदास है और छिपी-छिपी फिरती है ।

शशांक ने उससे कहा, “आज अगर तुम मुझे छोड़ जाती हो त तो सोच लो मेरी क्या दशा होगी ।”

उर्मि बोली, “मैं कुछ भी सोचने में असमर्थ हूं । आप दोनों जं तय करेंगे वही होगा ।”

तैयारी में कुछ समय लगा । उसके बाद जाने का समय जब निकट आ पहुंचा तब उर्मि ने कहा, “सात-आठ दिन और रुक जाओ मैं काकाजी से काम-काज की व्यवस्था के सम्बन्ध में बातचीत त कर आऊं ।”

उर्मि चली गई ।

इसी समय मथुरा बाबू गम्भीर मुंह बनाए शर्मिला के पास आए बोले, “तुम लोग ठीक समय पर ही जा रहे हो । तुम्हारे साथ बात चीत तय हो जाने के बाद ही मैंने शशांक का हिसाब-किताब अलग कर दिया था, अपने साथ उसके नफा-नुकसान का सिलसिला ही नर्ह रखा । इधर काम बंद करने की दृष्टि से शशांक कई दिनों से अपने

साव-किताव समझ रहा था। मालूम हुआ कि तुम्हारे रूप बिलकुल बचुके हैं। इतने पर भी जो देना है उसे देखते हुए जान पड़ता है कि मकान बेचना पड़ेगा।”

शर्मिला ने पूछा, “सर्वनाश यहां तक आ पहुंचा और उन्हें मालूम कि न हुआ!”

मथुरा काका बोले, “सर्वनाश चीज ही ऐसी है जो विजली की तरह एकाएक गिरती है, जिस क्षण मारती है उसके पहले जरा भी मालूम नहीं होने देती। वे समझते थे कि उनका नुकसान हो रहा है। उस समय थोड़े प्रयत्न से स्थिति संभल सकती थी किन्तु दुर्वृद्धि उत्पन्न हुई। व्यवसाय में हुई गलती को झटपट सुधार लेने की जल्दबाजी, हम सबसे छिपाकर, पत्थर के कोदले के बाजार में तेजी-मन्दी का सट्टा करने लगे। चढ़े बाजार में जो खरीदा था उसे मन्दी के बाजार में बेच देना पड़ा। एकाएक आज दिखाई पड़ा कि सब कुछ प्रतिशबाजी की भांति जल चुका है, केवल राख रह गई है। अब तो भगवान की कृपा से नेपाल का काम मिल जाए तभी निस्तार है।”

शर्मिला गरीबी से नहीं डरती। बल्कि वह जानती है कि अभाव का, गरीबी के, जमाने में स्वामी की दुनिया में उसका स्थान और सुदृढ़ हो जाएगा। उसे विश्वास है कि दारिद्र्य की कठोरता को यथा-सम्भव मृदु करके वह अपने दिन बिता सकती है। जो कुछ गहने उसके हाथ में बच रहे हैं, उनके सहारे अभी कुछ दिन बिना विशेष कष्ट के बीत जाएंगे। उसके मन में संकोच के साथ एक बात उठती है कि कर्म के साथ ब्याह हो जाने पर उसकी सम्पत्ति भी तो स्वामी की हो जाएगी। किन्तु केवल जीवनयात्रा ही तो यथेष्ट नहीं है। इतने दिनों अपनी शक्ति से अपने ही हाथ से स्वामी जो सम्पत्ति अर्जित करते आ रहे थे और जिसके लिए शर्मिला अपने हृदय के अनेक प्रबल दावों को स्वेच्छा से दबाती-रोकती आ रही है, वही उन दोनों के सम्मिलित जीवन की मूर्तिमती आशा आज भृग-मरीचिका की भांति

मिट गई और उनके गौरव को मिट्टी में मिला दिया। वह मन ही मन कहने लगी, 'यदि तभी मर गई होती तो इस धिक्कार से बचाव हो गया होता। मेरे भाग्य में लिखा था वह तो हो गया किन्तु गरीबी के अपमान की यह दारुण शून्यता एक दिन उनके मन को न जाने किस पश्चात्ताप से भूकम्प देगी। एक दिन ऐसा आ सकता है कि जिसके मोह में चूर होकर यह सब किया है, उसे उनका मन क्षमा न कर सके और उसका दिया अन्न उन्हें विष-तुल्य लगने लगे। अपनी उन्मत्तता का परिणाम देखकर लज्जित होंगे परन्तु दोष देंगे मदिरा को। और यदि अन्त में ऊर्मि की सम्पत्ति पर निर्भर रहना ही आवश्यक हो गया हो तो उस आत्मापमान के क्षोभ में ऊर्मि को क्षण-क्षण जल-जलकर मरना पड़ेगा।'

उपर एक दिन सब हिसाब-किताब देखने के लिए जब शशांक मथुरा बाबू के पास गया तब उसे अकस्मात् मालूम पड़ा कि व्यवसाय में शर्मिला के सारे रुपये डूब चुके हैं। शर्मिला ने इतने दिनों तक यह बात उसे नहीं बताई और स्वयं ही मथुरा बाबू के साथ हिसाब-किताब साफ कर दिया !

शशांक के मन में सब बातें याद आने लगीं, 'नौकरी छोड़ने पर उसने एक दिन शर्मिला से ही रुपये उधार लेकर यह व्यवसाय शुरू किया था और आज भी व्यवसाय का अन्त हो जाने पर शर्मिला का ऋण सिर पर लादे हुए वह नौकरी करने जा रहा है। अब यह ऋण तो वह चुका न पाएगा। नौकरी में मिलनेवाले वेतन से उसको चुकाने की कोई संभावना नहीं है।'

नेपाल-यात्रा को अब दस-एक दिन रह गए हैं। कल सारी रात शशांक सो नहीं सका। भोर होते ही वह हड़बड़ाकर विछीने से उठा और आईनेवाले टेबल पर जोर से मुट्ठी मारकर बोला, 'नेपाल नहीं जाऊंगा।' फिर हड़ प्रण किया, 'हम दोनों ऊर्मि को लेकर कलकत्ता में, टेढ़ी भृकुटि दिखानेवाले समाज की क्रूर दृष्टि के सामने ही रहेंगे। और इसी कलकत्ता में रहकर मैं अपने खण्डित व्यवसाय

। फिर से निर्माण कहूंगा ।’

कौन-कौन चीजें साथ जाएंगी और किन्हें यहीं रख जाना है, मिना बैठी इसकी एक सूची तैयार करने में लगी हुई थी । इतने में आवाज आई, “शर्मिला ! शर्मिला !”

तुरन्त कापी रखकर स्वामी के कमरे में दौड़ी गई । किसी अनिष्ट के आशंका से कांपते हृदय के साथ पूछा, “क्या हुआ ?”

“नहीं जाऊंगा नेपाल ! समाज को टुकड़ाऊंगा ! यहीं रहूंगा !”

शर्मिला ने पूछा, “क्यों, क्या हुआ ?”

शशांक ने कहा, “काम है ।”

बड़ी पुरानी बात, ‘काम है ।’ शर्मिला की छाती धड़क उठी ।

“शर्मि ! यह न समझो कि मैं कायर हूं, अपनी जिम्मेदारी छोड़कर भाग खड़ा होऊंगा ; क्या इतने अधःपतन की कल्पना तुम कर सकती हो ?”

शर्मिला पास जाकर उसका हाथ पकड़के बोली, “क्या हुआ है, मुझे समझाकर कहो ।”

शशांक बोला, “मैं फिर तुम्हारा कर्जदार हो गया हूं, इन बातों को छिपाने की कोशिश न करो ।”

शर्मिला बोली, “अच्छा, ठीक है ।”

शशांक बोला, “उस दिन की तरह आज फिर तुम्हारा कर्जदार होने बैठा हूं । जो हुआ है, उसे फिर से ऊपर तिताऊना, तब तक तनी बात नुन रखो । जिस प्रकार एक दिन तुमने मुझ पर विश्वास किया था, उसी प्रकार आज फिर मुझ पर विश्वास करो ।”

शर्मिला ने स्वामी की छाती पर निरंतर रखकर कहा, “तुम मुझे भ्रमण विश्वास करना । मुझे अपना काम-बाज समझाने रखना, अब मुझे ऐसी शिक्षा दो कि मैं तुम्हारे काम के योग्य बन सकूँ ।”

बाहर ने आवाज आई, “चिट्ठी है ।”

शर्मि के हाथ की चिट्ठी दो चिट्ठियां हैं । एक शशांक के नाम

“मैं अभी बम्बई के रास्ते में हूँ । विलायत जा रही हूँ । बाबूजी के आदेश के अनुसार डाक्टरी सीखकर ही लौटूंगी । छः-सात साल लग जाएंगे इसमें । तुम्हारी गृहस्थी में पहुंचकर मैं जो तोड़-फोड़ कर आई हूँ, वह इस बीच काल के हाथ से अपने-आप जुड़कर ठीक हो जाएगी । मेरे लिए चिन्ता न करना ; तुम्हारी ही चिन्ता रह गई है मन में ।”

शर्मिला की चिट्ठी में लिखा था :

“जोजी ! तुम्हारे चरणों में शत-सहस्र प्रणाम । अज्ञान में अपराध किए हैं, माफ कर देना । यदि तुम्हारी दृष्टि में वे अपराध न हों तो इतना जानकर ही मैं सुखी हो जाऊंगी । इससे अधिक सुख की आशा मन में नहीं रखूंगी । किसमें सुख है, इसे ही मैं निश्चित रूप से क्या जानती हूँ ! और सुख यदि नहीं है तो न सही । भूल करने से डरती हूँ ।”

रासमणि का बेटा

रासमणि थीं तो कालीशरण की मां किन्तु विशेष स्थिति आ जाने के कारण उन्हें पिता बनना पड़ा। मां-बाप दोनों ही जहां मां बन जाती हैं वहां लड़के की भलाई की आशा कम ही रह जाती है। रासमणि के पति भवानीचरण अपने बेटे पर किसी तरह की कड़ाई नहीं कर पाते थे।

वात यह है कि भवानीचरण ज्ञानवाड़ी के प्रतिष्ठित धनाढ्य कुल में पैदा हुए हैं। उनके पिता अभयाचरण ने दो विवाह किए थे। पहली स्त्री से एक पुत्र श्यामाचरण हुए। ज्यादा उम्र में, पहली स्त्री के मरने पर, जब उन्होंने दूसरा विवाह किया तब उनके ससुर ने आलन्दी ताल्लुका अपनी लड़की के नाम लिखा लिया क्योंकि जमाई की ज्यादा उम्र का हिसाब लगाकर उन्होंने सोच लिया था कि यदि लड़की विधवा भी हो गई तो उसे भोजन-वस्त्र के लिए सौतेले लड़के का मुंह तो नहीं देखना पड़ेगा।

लड़की के पिता की कल्पना शीघ्र ही सार्थक भी हो गई। नाती भवानीचरण के जन्म के कुछ दिनों बाद ही जमाई अभयाचरण का देहान्त हो गया। उनकी कन्या आलन्दी ताल्लुका की मालकिन हो गई।

तब श्यामाचरण प्रौढ़ हो चुके थे। उनका बड़ा लड़का भवानीचरण से साल-भर बड़ा था। श्यामाचरण, अपने बच्चों के साथ ही, भवानी का भी पालन करने लगे। भवानी की मां की सम्पत्ति को उन्होंने कभी हाथ न लगाया और हर साल साफ हिसाब देकर वे उनसे रसीद लेते रहे। जो देखता वही उनकी ईमानदारी पर मुग्ध हो जाता।

वैसे इतनी ईमानदारी को बेवकूफी कहनेवालों का भी अभाव नहीं था। गांववालों को यह अच्छा नहीं लगता था कि अखण्ड पैत्रिक सम्पत्ति का एक हिस्सा दूसरी स्त्री के हाथ में चला जाए। अगर श्यामाचरण किसी चालाकी से दस्तावेज खत्म कर देते तो लोग-बाग उनकी चतुराई की तारीफ ही करते किन्तु श्यामाचरण ने अपने पारिवारिक अधिकार को खंडित करके भी विमाता की जायदाद को सुरक्षित रखा।

कुछ इस ईमानदारी के कारण और कुछ अपनी स्वाभाविक स्नेहशीलता के कारण विमाता ब्रजसुन्दरी भी श्यामाचरण को अपने पुत्र की तरह ही मानती थीं और उनपर विश्वास रखती थीं। श्यामाचरण जो उनकी सम्पत्ति को स्वतंत्र मानकर चलते थे उसपर कभी-कभी झुंझलाकर कह उठती थीं, “बेटा, सम्पत्ति मैं अपने साथ तो ले नहीं जाऊंगी, तुम्हें लोगों की है, तुम्हें लोगों की रहेगी। इस तरह मुझे हिसाव-किताब क्यों दिखाया करते हो?” किन्तु श्यामाचरण कभी इन बातों से विचलित नहीं हुए।

श्यामाचरण अपने लड़के पर कड़ा शासन रखते थे। किन्तु भवानीचरण पर किसी तरह की कड़ाई नहीं करते थे। सब लोग यही कहते कि वे भवानी को अपने लड़के से ज्यादा चाहते हैं। पर इस लाड़-प्यार का फल यह हुआ कि भवानीचरण की पढ़ाई-लिखाई कुछ नहीं हुई। जायदाद की देख-भाल के विषय में वे सदा बालक रहे और अपने दादा (बड़े भाई) पर ही निर्भर करते रहे। कभी-कभी कागजों पर उन्हें दस्तखत-भर करने पड़ते थे। क्यों दस्तखत कर रहे हैं, यह जानने की उन्होंने कभी कोशिश नहीं की। और करते भी तो उसमें सफलता पाना उनके बश की बात न थी।

उधर श्यामाचरण का बड़ा लड़का तारापद, पिता के काम में सदा हाथ बटाने के कारण, धीरे-धीरे सब काम-काज सीख गया। जब श्यामाचरण की मृत्यु हुई तो एक दिन तारापद ने भवानीचरण से कह दिया, “काका, अब हमारा एकसाथ रहना संभव न होगा।

न जाने कब कोई भगड़ा-टण्टा खड़ा हो जाए और घर वर्राद होने का कुयोग आ जाए, इसलिए अलग रहना ही ठीक है।”

भवानीचरण ने तो कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि अलग होकर अपनी जमीन-जायदाद की देख-रेख मुझे स्वयं करनी पड़ेगी। वचपन से इसी घर में वे सबके साथ पलकर बड़े हुए हैं इसलिए स्वभावतः उसे अखण्ड समझते आए। इसलिए यह नई बात जानकर कि उसमें कहीं जोड़ है, जहां से उसके दो टुकड़े किए जा सकते हैं, व्याकुल हो गए।

किन्तु जब वंश की वेइज़्जती के भय एवं स्वजनों की मनोवेदना से तारापद अपने निश्चय से नहीं डिगा तब विवश होकर भवानीचरण को भी जायदाद के वंटवारे की चिन्ता करनी पड़ी। तारापद को उनकी चिन्ता पर आश्चर्य हुआ। उसने कहा, “काका, चिन्ता क्यों करते हैं? वंटवारा तो हो ही चुका है। बाबा अपने जीवनकाल में ही वंटवारा तय करके सब तय कर गए हैं।”

भवानीचरण हृद्वुद्धि होकर बोले, “ऐसा है क्या? मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं।”

तारापद ने कहा, “आश्चर्य है कि आपको कुछ नहीं मालूम। सारी दुनिया जानती है कि आलन्दी ताल्लुका आप लोगों को देकर बाबा पहले से ही व्यवस्था कर गए हैं कि वाद में कोई बखेड़ा न खड़ा हो। तब से बराबर वही बात चली आ रही है।”

भवानीचरण ने सोचा, ‘सब कुछ संभव है।’ फिर पूछा, “और यह मकान?”

तारापद बोला, “आप चाहें तो यह मकान ले सकते हैं हम लोगों को शहर की कोठी मिल जाएगी तो उसीमें, किसी तरह, काम चला लेंगे।”

तारापद इतनी सरलता से अपना पैत्रिक गृह छोड़ने को तैयार है, यह देख उसकी उदारता पर भवानीचरण को बड़ा आश्चर्य हुआ। शहर की कोठी उन्होंने न कभी देखी थी, न उससे कोई

अनुराग ही था ।

पर जब भवानीचरण ने अपनी मां व्रजसुन्दरी से सब बातें बताईं तो उन्होंने फिर पीटकर कहा, “वह कैसी बात है ? आलन्दी ताल्लुका तो मेरे लिए खास तौर से अलग कर दिया गया था । उससे तुम लोगों का क्या सम्बन्ध ? उसकी तो आय भी अधिक नहीं है । पत्रिक सम्पत्ति में तुम्हारा जो भाग है वह क्यों न मिलेगा ?”

भवानीचरण बोले, “तारापद का कहना है कि बाबूजी, उसके सिवा, हमें कुछ नहीं दे गए हैं ।”

व्रजसुन्दरी ने कहा, “वाह ! तुम्हारे बाबूजी, वसीयतनामे की दो नकल छोड़ गए हैं, उनमें से एक मेरे ट्रंक में है ।”

ट्रंक खोला गया । उसमें आलन्दी ताल्लुके के दानपत्र के सिवा कोई वसीयतनामा नहीं निकला । जान पड़ता है, किसीने गायब कर दिया ।

सलाह के लिए लोगों को बुलाया गया । गांव के पुरोहित का लड़का वगलाचरण आया । लोगों का कथन है कि चतुराई में कोई उससे टक्कर नहीं ले सकता । उसके बाप हैं गांव के मंत्रदाता, बेटा हो गया है मंत्रणादाता । बाप-बेटे ने मिलकर गांव के परलोक और लोक का काम बांट लिया है ।

वगलाचरण ने कहा, “वसीयत न मिलने से क्या होता है ? पत्रिक सम्पत्ति में दोनों भाइयों का बराबर-बराबर हिस्सा है ही । इसमें सन्देह की क्या बात है ?”

अन्त में भवानीचरण ने मुकदमे के समुद्र में अपनी नाव छोड़ दी ; वगलाचरण खेवैया हुए । जब नाव बन्दरगाह पर लगी और लोहे के सन्दूक की परीक्षा की गई तो देखा गया कि लक्ष्मी अपने वाहन-समेत वहां से उड़ गई हैं, केवल सोने के दो-एक पंख टूटे पड़े हैं । पत्रिक सम्पत्ति तारापद के हाथ चली गई ; आलन्दी ताल्लुके का जो हिस्सा मुकदमे के खर्च में डूबने से बचा उसमें किसी तरह गुजर चल सकती है पर प्रतिष्ठित कुल की प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं का जा

अपनी बड़ी भारी विजय समझा । तारापद सपरिवार शहर की कोठी में चला गया । इस प्रकार दोनों परिवारों का सम्बन्ध विलकुल समाप्त हो गया ।

श्यामाचरण का यह विश्वासवात ब्रजसुन्दरी को झूल की तरह चुभ गया । पिता का वसीयतनामा गायब करके श्यामाचरण ने भाई और पिता दोनों के साथ जो धोखेवाजी की उसे वे किसी तरह भूल नहीं सकीं और जब तक जीती रहें यही कहती रहें, 'भगवान देखेंगे ।' वे भवानीचरण को भी सान्त्वना देती रहें कि "मेरे कानून-अदालत नहीं जानती पर देखना उनका वसीयतनामा एक न एक दिन तुम्हें मिलकर रहेगा ।"

मां के मुंह से बार-बार सुनकर भवानीचरण भी विश्वास करने लगे कि वसीयतनामा कभी न कभी मिलेगा ही । अपनी विवशता के कारण इस तरह का भरोसा उनके लिए बड़ी बात थी । वे पूरी तरह विश्वास करके बैठ गए कि सती-साध्वी की बात किसी न किसी दिन पूरी होगी और उनकी चीज उन्हें मिलेगी । मां की मृत्यु के बाद तो उनका यह विश्वास और पक्का हो गया क्योंकि मृत्यु ने मां के पुण्य-तेज को उनके सामने और प्रखर कर दिया । अपनी गरीबी की कठिनाइयों की उन्हें कोई परवाह न रही । उनका विश्वास था, यह सब दो दिन का खेल है और समय आने पर सब कुछ ठीक हो जाएगा । पुरानी धरी ढाके की बढ़िया धोतियां जब फट गईं और खरीदकर सस्ती मोटी धोतियां पहननी पड़ीं तो हंसकर रह गए । पूजा में भी पुराने जमाने की धूमधाम न की जा सकी ; केवल परम्परा का किसी प्रकार पालन हो गया । अतिथि-अभ्यागतों ने गहरी सांस ले-लेकर पुरानी बातें छेड़ीं और भवानीचरण मन ही मन हंसकर रह गए । सोचा, 'बिचारे नहीं जानते कि यह बाधा क्षणिक है, बाद में तो एं-समारोहपूर्वक पूजा होगी कि लोग चकित रह जाएंगे ।'

उनकी बातें सुननेवालों में मुख्य था नटवर, जो उनका नौकर था। दोनों हर साल बैठकर योजना बनाया करते कि अच्छे दिनों में पूजा का महोत्सव किस तरह मनाया जाएगा। यहां तक कि निमंत्रण किन्हीं भेजे जाएंगे, और कलकत्ता से नाटक-मण्डली बुलाई जाए या नहीं, इन बातों को लेकर बहस भी छिड़ जाती। नटवर भावी कार्यक्रम के विषय में कंजूसी दिखाता जिसके कारण मालिक की फटकार सुननी पड़ती।

आशय यह कि अपनी सम्पत्ति के बारे में उन्हें कोई दुश्चिन्ता नहीं थी, उन्हें चिन्ता सिर्फ यह थी कि आखिर इस सम्पत्ति को भोगेगा कौन। अब तक उन्हें कोई संतान नहीं हुई थी। विवाह योग्य लड़कियों के पिता जब उनके हितैषी बनकर उन्हें सलाह देते कि दूसरा ब्याह कर लो तो उनका मन भी चंचल हो उठता। किन्तु कुछ दिनों बाद ही पुत्र का जन्म हुआ। सब कहने लगे, "अब इस घर का भाग चमकेगा। अभयाचरण ने इस लड़के के रूप में स्वयं जन्म लिया है। वही आखें, वही दृष्टि है।" लड़के की जन्मपत्री से भी पुष्टि हो गई कि ग्रहों का योग ऐसा है कि खोई सम्पत्ति अवश्य लौटेगी।

पुत्र-जन्म के बाद से भवानीचरण का स्वभाव भी कुछ-कुछ बदलने लगा। गरीबी को वे माया का खेल समझ अब तक सहन करते आए थे, किन्तु उस भाव की रक्षा वच्चे के सम्बन्ध में करते नहीं बनी। आज तक इस परिवार में निरन्तर जन्म से ही सन्तति को जो सम्मान प्राप्त होता आया है उससे उनका एकमात्र पुत्र वंचित हो रहा है, इस वेदना को वे भूल न पाते थे। आत्मग्लानि से कहते, 'मैंने ही इसे ओखा दिया।' इसीलिए उस वेदना को अत्यधिक लाड़-प्यार से ढकने की सदा कोशिश करने लगे।

किन्तु भवानीचरण की पत्नी रासमणि दूसरे ही कैंडे की थीं। उनके मन में चौधरी-वंश के गौरव की दुश्चिन्ता तो थी नहीं। भवानीचरण सोचते थे, 'वेचारी मामूली घर में जन्मी, इसलिए यह सब क्या समझे? क्षम्य है, चौधरी-वंश की मान-मर्यादा की धारणा

करना उसकी शक्ति के बाहर की चीज़ है ।'

रासमणि स्वयं भी स्वीकार करती थीं कि "मैं गरीब घर की लड़की हूँ, मान-मर्यादा से मुझे क्या लेना-देना है ? मेरे लिए तो बस यह कालीचरण है, वही बना रहे ।" खोए वसीयतनामे के फिर से प्राप्त होने और कालीचरण द्वारा लुप्त वंश-गौरव के उद्धार की बातों पर वे कोई ध्यान न देती थीं । उधर पति का यह हाल था कि सारे गांव में किसीको न छोड़ा जिससे खोए वसीयतनामे की बात न की हो । हाँ, अपनी स्त्री से अवश्य बात नहीं हुई । दो-एक बार कोशिश करके देखा भी, पर कोई बढ़ावा न मिलने से मन मसोसकर रह गए । बीती हुई महिमा और आनेवाले ऐश्वर्य दोनों ओर से रासमणि उदासीन थीं क्योंकि सामने की ज़रूरतों और चिन्ताओं के कारण उन्हें और कुछ सोचने-समझने की फुर्सत ही न मिलती थी ।

उपस्थित आवश्यकताएं कम न थीं । बड़ी मुश्किल से किसी तरह गृहस्थी चल रही थी । लक्ष्मी स्वयं तो बड़ी सरलता से चली जाती हैं पर पीछे इतना बोझ छोड़ जाती हैं कि बाहकों से ढोते नहीं बनता । साधन तो रहता नहीं पर असाधन बहुत बच जाता है । इस परिवार का आश्रय तो टूट चुका है पर आश्रितगण अब भी उसे छोड़ना नहीं चाहते । भवानीचरण भी ऐसे नहीं हैं कि गरीबी और तंगी के कारण किसीसे चले जाने को कह दें ।

बोझ से दबी-पिसी ऐसी टूटी-फूटी गृहस्थी को चलाने का तारा भार बेचारी रासमणि पर है । किसीसे भी उन्हें कोई विशेष सहायता नहीं मिलती । इस घर के जब अच्छे दिन थे तब सभी आश्रित आराम और आलस्य में दिन बिताते थे । इसलिए जब आज उनसे किसी प्रकार का काम करने को कहा जाता है तो उसमें वे अपना भारी अपमान अनुभव करते हैं । रसोईघर के धुएं से उनका सिर दुखने लगता है और चलने-फिरने का कोई काम आते ही गठिया का वह दर्द शुरू हो जाता है कि आयुर्वेद का अच्छा से अच्छा तेल भी बेकार साबित होता है । फिर भवानीचरण का यह भी कहना है कि आश्रय

के बदले यदि आश्रितों से सेवा ही कराई गई तो वह नौकरी से भी बुरी हुई। उससे तो आश्रयदाता का महत्त्व ही नष्ट हो गया। चौधरी-वंश में कभी ऐसा नहीं हुआ।

इसलिए रासमणि पर ही सब कुछ करने-घरने की जिम्मेदारी आ पड़ी है। दिन-रात के कठोर परिश्रम और न जाने किन-किन उपायों से वे घर की सारी आवश्यकताओं को पूरा किया करती हैं। और इस तरह जिस प्राणी की दिन-रात गरीबी से लड़ते हुए बड़ी खींचा-तानी से अपना और दूसरों का निर्वाह करना पड़ता है उसकी कम-नीयता जाती रहती है और वह स्वभावतः कठोर हो जाता है। मजा तो यह है कि जिनके लिए उन्हें इतना सब करना-सहना पड़ता है उन्हें ही उनकी ये बातें सह्य नहीं। केवल भोजन बनाकर ही रासमणि को फुर्सत नहीं मिल जाती, उन्हें नमक से लेकर घी तक छोटी-बड़ी सब चीजें भी स्वयं ही जुटानी पड़ती हैं। आश्चर्य तो यह है कि उस अन्न से तृप्त होकर जो रोज़ दोपहर को खरौंटे लिया करते हैं वे भी अन्न और अन्नदाता दोनों की निन्दा करने से वाज्र नहीं आते।

फिर रासमणि को केवल घर का ही काम-काज नहीं संभालना पड़ता, लेन-देन और बची-खुची जायदाद की देख-भाल तथा हिसाब-किताब-सम्बन्धी सब काम करने में और भी कठिनाई है क्योंकि भवानी-चरण का रूपया प्रकृति में अभिमन्यु से उलटा है। अभिमन्यु केवल पैठना जानता था, यह केवल निकलना जानता है, लौटना नहीं। रूपयों के लिए कभी किसीसे तकाजा करना भवानीचरण के स्वभाव में नहीं है। रासमणि इस मामले में ठीक उनकी उलटी हैं। वे खरी हैं, किसीसे एक घेले की रियायत नहीं करतीं। किसान आपस में उनकी निन्दा किया करते, और गुमाश्ते इसे उनके गरीब पितृवंश का ओछापन बताकर आलोचना। यहां तक कि कभी-कभी पति तक इस तरह की कंजूसी और कड़ाई को अपने प्रसिद्ध वंश के लिए मानहानिकर कहकर नाराज होते। किन्तु निन्दा और अप्रसन्नता की पूर्णतः उपेक्षा करके रासमणि अपना काम नियम से करती ही जाती

थीं। अपना दोष स्वीकार कर कहतीं, "मैं गरीब घर की लड़की, अमीरी रंग-ढंग क्या जानूँ!" इस प्रकार घर-बाहर सर्वत्र सबकी अप्रिय होकर, आंचल कमर से लपेटे आंधी की तरह सब काम-काज करती रहती।

पति को किसी काम के लिए बुलाकर कहना तो वे जानती ही नहीं, उलटे उन्हें डर लगा रहता था कि कहीं वे अपने ढंग पर कोई काम करने के लिए मेरे काम में हस्तक्षेप न कर दें। सभी बातों में, पति के कुछ कहने पर उत्तर देतीं, "तुम चिन्ता न करो, मैं सब कर लूंगी।" और इस तरह उन्हें निरुद्धमी बनाए रखती। पति वचन से हाथ-पांव न डुलाने और सोच-फिकर न करने के आदी थे इसलिए रासमणि को इस विषय में ज्यादा रगड़-भगड़ न करनी पड़ती थी। बहुत उम्र तक संतान न होने के कारण अपने अकर्मण्य और सरल-प्रकृति पति से ही उनके दाम्पत्य-प्रेम एवं मातृस्नेह दोनों की प्यास मिट जाया करती थी, मानो भवानीचरण एक बड़ी उम्र के बच्चे हों। सास की मृत्यु के बाद से वे ही घर की मालकिन एवं गृहिणी दोनों बन गई थीं। गुरुपुत्र तथा अन्य विपदाओं से पति-रक्षा के कार्य में वे इतनी कठोरता से काम लेती थीं कि पति के संगी-साथी भी उनसे डरते रहते थे।

आज तक भवानीचरण स्त्री के कहने पर ही चलते रहे किन्तु अब पुत्र कालीचरण के विषय में पत्नी का कहना मानना उनके लिए कठिन हो गया। रासमणि पुत्र को भवानीचरण की दृष्टि से नहीं देख पाती थीं। पति के विषय में वे मन में सोचती थीं कि उनका कसूर क्या है, वे क्या करें, उन्होंने बड़े घर में जन्म लिया है इसलिए उनका वैसा सोचना-करना ठीक ही है। इसीलिए न वे चाहती हैं, न आशा करती हैं कि उनके पति किसी तरह का कष्ट उठाएं। कितनी ही तकलीफें और अभाव हो वे प्राणपण से पति की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न करतीं। उनके घर में बाहरी लोगों के लिए स्थानाभाव हो पसन्द भवानीचरण के आहार-व्यवहार-सम्बन्धी परम्परागत विधानों का

भी व्यक्तिगत न होने पाता था। कभी बहुत ज्यादा कष्ट और अभाव होने पर किसी चीज की कमी होती तो भी वे पति पर उसे प्रकट न होने देती थीं। जरूरत होती तो यह कहकर बात छिपा लेतीं कि "इस दुष्ट कुत्ते के मारे तो नाक में दम है, सब कुछ भ्रष्ट कर दिया!" उलटे अपनी कल्पित असावधानी के लिए अपने को धिक्कारने लगतीं। यदि धोती की जरूरत होती और धोती खरीदने का जुगाड़ न हो पाता तो नटुआ नौकर के ऊपर भंभलाती हुई कहतीं, "अभी कल ही धोती मंगाई है, आज इस गधे ने न जाने कहां खो दी।" फिर तो भवानीचरण अपने प्रिय सेवक का पक्ष लेकर उसे पत्नी की डांट-फटकार से बचाने को उद्यत हो जाते। कभी-कभी तो यह भी हुआ है कि जो धोती न खरीदी गई, न भवानीचरण ने कभी उसे देखा और जिसको खोने के लिए नटवर अपराधी है, उसके बारे में भवानीचरण कबूल कर लेते कि 'नटवर का कसूर नहीं, उसने तो धोती मुझे चुनकर दी थी, पर मैंने कहां रख दी या मुझसे फिर क्या हुआ, याद नहीं आता।' रासमणि उनकी बात को पूरा करते हुए कहतीं, "तब जरूर तुम बाहर की बंठक में छोड़ आए होगे। वहां सभी तरह के लोग आते-जाते हैं, किसी ने हथिया ली होगी।"

भवानीचरण के लिए तो इतनी चिन्ता-व्यवस्था थी पर पुत्र को वे पति के समकक्ष नहीं रख पातीं। सोचतीं, 'वह तो मेरे ही पेट की संतान है, उसके लिए अमीरी रहन-सहन कैसा? उसे तो दृढ़ और समर्थ होना चाहिए जिससे सरलतापूर्वक कष्टों का सामना कर सके' और मेहनत-मजूरी करके भी पेट भर सके। उसके लिए 'यह भी' और 'वह भी' वाली व्यवस्था नहीं चाहिए। इसलिए कालीचरण के लिए खान-पान और वस्त्र की सामान्य व्यवस्था थी। उसे मिलता नाश्ते के लिए गुड़-चूड़ा तथा सर्दी से बचने के लिए दुलाई जिससे सिर-कान-भो ढकने की सुविधा रहती। स्कूल के पण्डितजी को बुलवाकर रासमणि ने कह दिया, "देखिए पण्डितजी! लड़के की पढ़ाई में जरा भी ढील-ढाल न कीजिएगा, अपनी देख-रेख में कड़ाई रखिए जिससे

कुछ पढ़-लिख जाए ।”

यहीं कठिनाई आ पड़ी और दोनों टकरा गए । सीधे-सादे भवानी-चरण में भी विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे । रासमणि इन लक्षणों पर ध्यान नहीं देतीं । भवानीचरण प्रबल पक्ष से सदा हारते आए हैं ; इस बार भी हार मानकर बैठ रहे पर मन से विरोध को हटा नहीं सके । चौधरी-वंश का लड़का घोधी ओढ़े और चूड़ा-गुड़ का लपान करे ऐसी अनहोनी बात कब तक सही देखी जा सकती है !

उन्हें पुराने दिन याद आते हैं । जब बाप-दादों का जमाना था तब दुर्गापूजा के दिनों में उन्हें कितने अच्छे-अच्छे कपड़े मिलते थे और उन्हें पहनकर वे कैसे उत्साह से समारोह में शामिल हुआ करते थे । और आज रासमणि बेचारे कालीचरण के लिए ऐसे कपड़े मंगाती है जिन्हें हमारे नौकर-चाकर भी पहनने में आपत्ति करते थे । उनकी वेदना दूर करने के लिए रासमणि ने कई बार उन्हें समझाया है कि “कालीचरण को जो कुछ दिया जाता है उसीमें वह खुश रहता है । उसे क्या मालूम कि पुराने जमाने में क्या होता-जाता था इसलिए तुम व्यर्थ ही दुःखी होते हो ।” पर उन्हें किसी तरह सन्तोष न होता । वे भूल न पाते थे कि बेचारे कालीचरण को अपने वंश-गौरव के प्रति अज्ञान रखकर उसे ठगा जा रहा है । उन्हें सबसे अधिक वेदना तब होती जब कालीचरण कोई मामूली उपहार पाने पर दौड़कर उनके पास खुशी से नाचता दिखाने के लिए आता था । ऐसा दृश्य उनको देखा नहीं जाता था और ऐसे समय अक्सर वे मुंह फिरा लेते या वद से उठ जाते थे ।

जब से भवानीचरण वाला मुकदमा चला तब से उनका गुस्सा काफी सम्पन्न दिखाई पड़ने लगा है । इससे भी सन्तुष्ट न हो चरणचरण पूजा के अवसर पर कलकत्ता से तरह-तरह के चमक-दमकक विलायती खिलौने लाकर दुकान लगा लिया करता है । इन चीजों देखकर गांव के बच्चों एवं नर-नारियों के चित्त चलायमान हो हैं और जब वे सुनते हैं कि कलकत्ता के बाबुओं में इनका प्रच

रहा है तो गांववाले भी अपनी ग्रामीणता दूर करने के लिए अपनी शक्ति से अधिक खर्च कर इन्हें खरीदने का यत्न करते हैं ।

एक बार बगलाचरण एक आश्चर्यकारी मेम-गुड़िया ले आया । उसमें जब चाबी भर दी जाती है तो मेम कुर्सी से उठकर पंखा झलने लगती है । जब कालीचरण ने इस मेम-गुड़िया को देखा तो उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठा । मां से तो उसे कोई आशा थी नहीं इसलिए वह मां से कुछ न कहकर भवानीचरण के पास गया और उनसे गुड़िया ले देने को कहा । भवानीचरण ने उसे तुरन्त आश्वासन दिया कि गुड़िया ला देंगे । परन्तु जब उन्हें उसके दाम का पता लगा तो उनका मुंह सूख गया ।

रुपये-पैसे की बसूली और रोकड़-नकदी सब रासमणि के हाथ में है । भवानीचरण भिखारी की तरह अपनी अन्नपूर्णा के द्वार पर जा पहुंचे । कुछ देर इधर-उधर की बात करके अपने मन की बात कही । रासमणि से संक्षिप्त उत्तर मिला, “तुम्हारा सिर फिर गया है क्या ?”

भवानीचरण कुछ देर चुप सोचते रहे । फिर एकाएक बोले, “देखो, तुम भात के साथ जो घी और खीर मुझे देती हो उसकी क्या आवश्यकता है ?”

रासमणि, “है क्यों नहीं ?”

भवानीचरण बोले, “वैद्यजी कह रहे थे कि उससे पित्त बढ़ता है ।”

रासमणि ने सिर हिलाकर कहा, “हां, तुम्हारे वैद्य तो सब जानते ही हैं !”

भवानीचरण बोले, “रात को पूरी बन्द कर दो ; भात किया करो । पूरियों से पेट भारी हो जाता है ।”

रासमणि बोलीं, “आज तक तो इससे तुम्हें कोई हानि पहुंची नहीं । रात को तो सदा से ही पक्का भोजन करते आए हो ।”

भवानीचरण बेटे के लिए हर तरह का त्याग करने को तैयार थे परन्तु गृहिणी की कड़ाई के सामने चुप रह गए । घी बराबर महंगा

होता जा रहा है किन्तु पूरियों की तादाद में कोई कमी नहीं है। दोपहर के भोजन में खीर बनती है तब बिना दही के भी चल सकता है, किन्तु इस घर के कर्ता जब सदा से दही और खीर खाते आए तब उसमें उलट-फेर कैसे हो सकता है ! किसी दिन भवानीचरण के भोग में दही कम हो जाता तो उतनी त्रुटि भी रासमणि के लिए असह्य हो उठती। इसलिए उस हवा खानेवाली मेम का भवानीचरण के घी-दही-खीर-पूरी-त्याग के किसी भी छिद्र से घर में प्रवेश न हो सका।

तब भवानीचरण एक दिन गुरुपुत्र के घर पहुंचे। ऊपर से प्रकट किया कि योंही घूमते-फिरते चले आए हैं। पहले कुछ देर इधर-उधर की बातें करते रहे; अन्त में उस गुड़िया की चर्चा की। फिर संकोच को किसी तरह दबाकर अपने दुपट्टे में लिपटा हुआ एक मूल्यवान कश्मीरी शाल निकाला और रुंधे कण्ड से बोले, “भैया, समय खराब है; हाथ में नकद रुपये न होने से सोचा इसे तुम्हारे पास बंधक रखकर लड़के के लिए गुड़िया खरीद दूं।”

इतने कीमती दुशाले की जगह कम मूल्य की दूसरी चीज होती तो शायद बगलाचरण मान जाता पर वह जानता है कि इसे पचा लेना मुश्किल होगा; गांव के लोगों की निन्दा सुनने के अतिरिक्त भी रासमणि के मुंह से जो निकलेगा वह कुछ सरस न होगा। इसलिए दुशाले को फिर दुपट्टे में छिपाकर भवानीचरण को निराश लौट आना पड़ा।

कालीचरण रोज पूछता, “बाबूजी ! मेम का क्या हुआ ?” और भवानीचरण रोज हंसते हुए कह देते, “अभी जल्दी क्या है। पूजा तो आने दो।”

किन्तु प्रतिदिन मुंह पर ज़बर्दस्ती हंसी खींच लाकर बेटे को सान्त्वना देते जाना उनके लिए कठिन हो गया। आज चतुर्थी हो गई; सप्तमी को सिर्फ तीन दिन और रह गए हैं। भवानीचरण बहाने से अक्षमय ही अन्तःपुर में जा पहुंचे और बातचीत में सहसा बोल उठे, “देखो, मैं कई दिनों से देख रहा हूं कि कालीचरण का स्वास्थ्य इधर

वरावर गिरता जा रहा है ।”

रासमणि ने कहा, “भगवान न करें ऐसा हो ! उसका स्वास्थ्य क्यों गिरने लगा ? मैं भी रोज़ देखती हूँ, मुझे तो ठीक लगता है !”

भवानीचरण ने कहा, “देखती नहीं, चुपचाप गुमसुम बैठा रहता है । न जाने क्या सोचा करता है ?”

रासमणि बोली, “वाह ! घड़ी-भर तो उससे चुप बैठा नहीं जाता ! उसे चिन्ता क्या है ? कहां क्या शरारत करे यही सोचा करता होगा ।”

किले की दीवार में कहीं कोई छिद्र नहीं मिला ; पत्थर पर गोले का दाग भी न लगने पाया । गहरी सांस लेकर सिर पर हाथ फेरते हुए भवानीचरण बाहर चले आए और चबूतरे पर बैठ गहरा कश लगाकर हुक्का पीने लगे ।

पंचमी का दिन आया तो थाली की खीर और दही ज्यों का त्यों पड़ा रह गया । रात को भी सिर्फ एक सन्देश खाकर उठ गए, पूरी को हाथ भी न लगाया । पूछने पर बोले, “विलकुल भूख नहीं है ।”

इस वार किले की दीवार में एक बड़ा छिद्र दिखाई पड़ा । छठ को रासमणि ने स्वयं कालीचरण को एकान्त में बुलाया और सिर पर हाथ फेरकर बोलीं, “बेटा, अब तुम बड़े हो गए हो पर अब भी हर चीज़ के लिए हठ करते हो । यह बुरी बात है । जानते हो जो चीज़ दुर्लभ है, मिल नहीं सकती, उसपर मन चलाना आधो चोरी है ?”

कालीचरण ने कहा, “मैं क्या करूं ? बाबूजी ने कहा था कि गुड़िया ला दोगे ।”

तब रासमणि उसे बाबू के आश्वासन का अर्थ समझाने लगीं । पिता के उस आश्वासन में कितना स्नेह, कितना प्यार और कितनी वेदना भरी है, पर उस चीज़ के लाने से गरीब घर पर कितना बोझ पड़ेगा, यह सब उसे बताने लगीं । यह एक नई बात थी । आज तक उन्होंने कभी कोई बात प्रेम से समझाकर कालीचरण को नहीं बतलाई थी । कभी अपने किसी आदेश को नरम करने की आवश्यकता ही उन्हें नहीं पड़ी । इसलिए ऐसे प्रेम से समझाने पर कालीचरण को

आश्चर्य हुआ और बालक होने पर भी इतना तो समझ ही गया कि मां के हृदय में उसके लिए कहीं गहरा दर्द है। फिर भी मेम की ओर से अपना मन न हटा सका। उसका मुंह फूल गया। वह लकड़ी से जमीन कुरेदने लगा।

समझते न देख रासमणि फिर कठोर हो गई और तेज स्वर में बोली, “चाहे क्रुद्ध हो या रोओ, जो चीज मिलने की नहीं वह नहीं मिलेगी !” और ज्यादा समय नष्ट न कर तेजी से काम को चली गई।

कालीचरण बाहर आ गया। भवानीचरण अकेले बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। लड़के को दूर से देखते ही जल्दी से उठकर चल दिए जैसे किसी जरूरी काम से कहीं जाने की याद आ गई हो। वेटा दीड़ा आया और बोला, “बाबूजी, मेरी वह मेम...”

आज भवानीचरण हंस नहीं सके। प्यार से वेटे को खींचकर बोले, “जरा ठहर वेटा, एक जरूरी काम करता आज तब तुझसे बात करूंगा।” और तुरन्त बाहर चले गए। कालीचरण को मालूम हुआ, मानो बाबूजी जाते-जाते दुपट्टे से आंसू पोंछ रहे हों।

उस समय पड़ोस के घर के द्वार पर परीक्षा-रूप में शहनाई सुनी जा रही थी। शहनाई के करण सुर में शरत्-प्रभात की धूप प्रच्छन्न अश्रुजल के भार से व्यथित-सी लग रही थी। कालीचरण अपने घर के दरवाजे पर खड़ा राह की ओर देखता रहा जिसपर उसके पिता चले जा रहे थे। उनकी चाल से ही मालूम हो रहा था कि उन्हें कहीं जाना नहीं है; हर पग पर मानो निराशा का भारी बोझ उठाए हुए वे चले जा रहे हों और उन्हें ऐसा स्थान न मिल पा रहा हो जहां बोझ पटककर चैन की सांस ले सकें।

कालीचरण ने घर के अन्दर जाकर मां से कहा, “मां, मुझे वह मेम नहीं चाहिए।”

मां उस समय सरीत से जल्दी-जल्दी मुपारी कतर रही थीं। कालीचरण की बात से उनका मुंह खिल उठा। वहां बैठकर कुछ देर

मां-बेटे में न जाने क्या सलाह होती रही, फिर सरोता-सुपारी छोड़ रासमणि बगलाचरण के घर की ओर चल पड़ीं ।

भवानीचरण बड़ी देर में घर लौटे । नहा-धोकर जब भोजन पर बैठे तब उनके सूखे चेहरे से यही मालूम पड़ा कि आज भी दही-खीर की सद्गति नहीं होगी और मछली का रसा भी पालतू विल्ली के ही हिस्से में आएगा ।

पर इतने में ही रस्सी से बंधा एक दफतीवाला बक्स हाथ में लिए रासमणि आ गई और पति के सामने बैठकर बक्स खोल डाला । ज़मीन पर रखते ही मेम साहिवा ज़ोर-ज़ोर से हवा करने लगीं । विल्ली निराश लौट गई । भवानीचरण गृहिणी से बोले, “आज रसोई बड़ी स्वादिष्ट बनी है । बहुत दिनों से ऐसा भोजन नहीं किया । खीर का तो कहना ही क्या !”

सप्तमी को कालीचरण अपनी इच्छित वस्तु पा गया और दिन-भर मेम का हवा खाना देखता और अपने साथियों को दिखाता रहा । दूसरा समय होता तो लगातार एक ही दृश्य देखकर उसका मन ऊब जाता पर चूंकि अष्टमी के दिन मेम वापस चली जाएगी इसलिए उसकी दिलचस्पी कम नहीं हुई । बात यह थी कि रासमणि दो रुपये नकद देकर सिर्फ एक दिन के लिए गुड़िया किराये पर लाई थी । अष्टमी के दिन गहरी सांस लेकर कालीचरण स्वयं बक्स-समेत गुड़िया लौटा आया ।

तब से कालीचरण सलाह-मशविरे में मां का साथी बन गया । और भवानीचरण हर साल अपने बेटे को ऐसे-ऐसे मूल्यवान उपहार देने लगे कि सोचने पर खुद उन्हें आश्चर्य होता । अपनी मां के ममत्व का अनुभव कर कालीचरण ज्यों-ज्यों समझने लगा कि संसार में बिना मूल्य चुकाए कोई भी चीज़ नहीं मिल सकती और वह मूल्य कितने कष्ट-दुःख से प्राप्त होता है त्यों-त्यों भीतर से वह महत् होने लगा । अब वह सभी बातों में मां का साथ देने लगा और बिना उप-देश के ही वह समझ गया कि उसे घर-गृहस्थी का भार कम करना

है, बढ़ाना नहीं है। वह यह भी समझने लगा कि आगे चलकर उसे ही घरवालों का पूरा बोझ संभालना होगा इसलिए वह दिलोजान से पढ़ने-लिखने में लग गया। छात्रवृत्ति की परीक्षा में सफल हुआ और उसे छात्रवृत्ति मिलने लगी। उधर भवानीचरण सोचने लगे, 'और पढ़कर क्या करेगा; उसे ज़मींदारी का काम-काज देखना चाहिए।'

कालीचरण ने मां से कहा, "कलकत्ता जाकर पढ़े बिना मेरी योग्यता कैसे बढ़ेगी?"

मां बोली, "हां, कलकत्ता तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा।"

कालीचरण ने कहा, "मेरे लिए तुम्हें अब कुछ खर्च न करना पड़ेगा। जो छात्रवृत्ति मिलेगी उसीसे काम चला लूंगा; कुछ कमी पड़ी तो एकाध ट्यूशन कर लूंगा।"

भवानीचरण को राजी करने में बहुत कठिनाई हुई। ज़मींदारी को तो कुछ ज्यादा संभालने को है नहीं, यह कहने पर भवानीचरण को बड़ी चोट लगती, इसलिए रासमणि उसे दवा गई, इतना ही कहा कि "आखिर कालीचरण को लायक तो बनाना ही है।" मुश्किल यह थी कि पीढ़ियों से इस वंश में कोई घर छोड़कर बाहर नहीं गया, फिर भी प्रायः सबके सब योग्य ही निकले। भवानीचरण परदेश से बहुत डरते थे। वे समझ ही न पाते कि कालीचरण जैसे अबोध बच्चे को कलकत्ता जैसे नगर में भेजने की बात किसीके दिमाग में आ कैसे सकती है, किन्तु जब गांव के सबसे बुद्धिमान वगलाचरण ने रासमणि की बात का समर्थन करते हुए कह दिया कि, "कालीचरण बक्रील हो जाएगा तो एक दिन स्वयं ही उस चोरी गए वसीयतनामे को ढूँढ़ निकालेगा। यह विधि का लेख है जो मिटाने से नहीं मिट सकता। उसे कलकत्ता जाना ही पड़ेगा।"

वगलाचरण की इस बात से भवानीचरण को काफी सान्त्वना मिली। वे पुराने कागज़ निकाल लाए और वसीयतनामे का चोरी के सम्बन्ध में कालीचरण को समझाने लगे। माता के मंत्री का कार्य वह कुचारण रूप से सम्पादन कर रहा था किन्तु पिता के इस कार्य में वह

कुछ विशेष योग न दे सका ।

वात यह थी कि परिवार में हुए इस पुराने अन्याय के प्रति उसके मन में कोई पर्याप्त उत्तेजना न थी । हां, पिता की बातों पर सिर हिलाता गया ।

कलकत्ता जाने के एक दिन पूर्व रासमणि ने कालीचरण के गले में एक रक्षाकवच बांध दिया । फिर पचास रुपये देकर बोलीं, “इन्हें रखो, कभी कोई आपत्ति आ जाए तो इनसे काम लेना ।” घर-खर्च में से बड़ी चतुरता एवं कष्ट से बचाए इन रूपयों को कालीचरण ने वास्तविक और पवित्र कवच समझकर ले लिया ; मन ही मन निश्चय किया कि मां के आशीर्वाद-रूप में इन रूपयों को सदा सुरक्षित रखेगा, कभी खर्च न करेगा ।

आजकल भवानीचरण वसीयतनामे के वारे में बहुत कम बातचीत करते हैं ; अब तो केवल कालीचरण ही उनकी बातचीत का केन्द्र बन गया है । उसीकी बात करने के लिए गांव में घर-घर घूमा करते हैं । जब उसका कोई पत्र आता है तो उसे लेकर सब जगह सुना आते हैं । उनके वंश में कभी कोई कलकत्ता नहीं गया इसलिए कलकत्ता के गौरव ने उनकी कल्पना को उत्तेजित कर दिया था । “हमारा कालीचरण कलकत्ता में पढ़ता है ; वहां की कोई बात उससे छिपी नहीं, यहां तक कि हुगली के पास गंगा पर बनेवाले पुल की बात भी जानता है ।” “सुना भैया, गंगा पर एक और बड़ा पुल बन रहा है, कालीचरण का जो पत्र आज आया है उससे यह खबर मिली है ।” कहते हुए वे चश्मा निकाल लेते और उसे खूब पोंछकर पूरा पत्र पढ़कर सुना देते । “देखो, जमाना क्या आ गया । पुल बनेगा, उसपर से कुत्ता-बिल्ली सब गंगा पार करेंगे, कलकाल में जो न हो जाए !” जो मिलता उसीसे कहते, “मैं कहता हूं, गंगाजी अब ज्यादा दिन इस धरती पर न ठहरेंगी ।” और मन ही मन आशा करते कि गंगाजी जब जाने लगेंगी तो उसकी खबर भी पहले कालीचरण के पत्र से ही

मिलेगी ।

कालीचरण दूसरे के मकान में रहकर सुबह-शाम कुछ काम या ट्यूशन करके किसी तरह अपनी पढ़ाई चलाने लगा । कठोर परिश्रम से उसने प्रवेशिका परीक्षा पास की । उसे फिर छात्रवृत्ति मिली । इस आश्चर्यजनक घटना पर भवानीचरण के मन में ऐसी उत्तेजना हुई कि सारे गांव को निमंत्रित करने को व्याकूल हो उठे परन्तु रास-मणिक की ओर से किसी प्रकार का उत्साह न मिलने से दावत का कार्यक्रम स्थगित हो गया ।

इस बार कालीचरण को कालेज के पास ही एक 'मेस' में जगह मिल गई । मेस के अधिकारी ने उसे नीचे की मंजिल की एक कोठरी रहने के लिए दे दी है । दोनों समय खाना भी वहीं से मिल जाता है ; बदले में कालीचरण उनके लड़कों को पढ़ा देता है । इस सीलन-भरी कोठरी में रहने में कालीचरण को इतना ही फायदा था कि दूसरा कोई साभोदार न होने से वह अपनी पढ़ाई निर्विघ्न कर सकता था ।

मेस की दूसरी मंजिल में बड़े घर का एक लड़का रहता है । यद्यपि मेस की जगह सरलतापूर्वक वह कोई स्वतंत्र मकान लेकर उसमें रह सकता है परन्तु उसे मेस में रहना पसन्द है । घर के लोगों के वैसा अनुरोध करने पर वह यह कहकर टाल देता कि घर में अपने आदमियों के बीच रहने से पढ़ाई-लिखाई नहीं होगी । पर सच पूछा जाए तो असल कारण यह नहीं है । वस्तुतः उसे घूमने-फिरने, संर-सपाटे का शौक है और घर में रहने पर घरवालों से तो पिण्ड छुड़ाना मुश्किल होता ही है, उनकी फर्माइशों और जिम्मेदारियों का बोझ भी उठाना पड़ता है । 'उससे ऐसा व्यवहार उचित नहीं' 'ऐसा करने से निन्दा होगी' इत्यादि उपदेशों की भंभट में कौन पड़े इसलिए शैलेन्द्र के लिए मेस ही स्वतंत्र और अच्छी जगह है । यहां आदमी खो बहुत हैं पर अपने ऊपर उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं । आते-जाते हैं, गप-शाप करते हैं, नदी की धारा की तरह सदा बहते रहते हैं ।

शैलेन्द्र की धारणा थी कि वह सहृदय है, इसलिए भद्र जन

है, अच्छा आदमी है। इस धारणा में एक लाभ है कि आदमी को 'अच्छा आदमी' बनने के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। अहंकार हाथी-घोड़े जैसी खर्चीली चीज़ नहीं है, उसे बहुत कम खर्च और बिना खुराक के भी मोटा-ताजा बनाए रखा जा सकता है। फिर शैलेन्द्र में तो खर्च करने की शक्ति भी थी और वैसी आदत भी थी। इसलिए वह अपने अहंकार को तरह-तरह की कीमती खुराक देकर सुन्दर एवं सुसज्जित भी बनाए रखता है।

शैलेन्द्र के मन में दया-माया बहुत थी। दूसरों के दुःख-कष्ट दूर करने में बड़ा उत्साह रखता था—इतना ज्यादा कि अगर कोई अपना दुःख दूर करने के लिए उसका आश्रय न लेता तो उसे वह स्वयं दुःख देने पहुंच जाता और उसकी दया निर्दय होकर विपज्जनक हो उठती।

मेस के लोगों को सिनेमा-थियेटर दिखाना, होटल में खिलाना-पिलाना, ज़रूरत पर रुपये उधार देकर फिर उसे भूल जाना इत्यादि गुण उसमें थे। अगर कोई नवविवाहित मुग्ध युवक ऐसा होता कि पूजा की छुट्टियों में घर जाने के समय उसकी जमापूजी वासे का खर्च चुकाने में समाप्त हो जाती तो नई बहू के मनोहरण के योग्य साबुन, ऐसैंस इत्यादि प्रसाधन-सामग्री और साथ ही नये फैशन के एकाध क्लाउज़ इत्यादि का प्रवन्व कर लेने में उसे कोई दिक्कत न होती। शैलेन्द्र की सुरुचि पर विश्वास करके वह कहता, "तुम्हीं अपनी पसन्द से खरीदवा दो"। जब वह दुकान में कोई मामूली चीज़ खरीदने के लिए पसन्द करता तो शैलेन्द्र कहता, "छिः-छिः। क्या पसंद है जनाव की!" फिर तो शैलेन्द्र सबसे अच्छी और सुन्दर वस्तुएं स्वयं छ़ांट देता। दाम सुनकर युवक खरीदार जब सकते में आ जाता तब दाम चुकाने का भार शैलेन्द्र स्वयं अपने ऊपर ले लेता। युवक बार-बार आपत्ति करता परन्तु उसकी आपत्ति निष्फल होती।

इस प्रकार शैलेन्द्र अपने चतुर्दिक के लोगों का आश्रय-स्वरूप बन गया था। लोगों का उपकार करने का शौक उसमें इतना प्रबल हो गया था कि जो उसका आश्रय न स्वीकार करता उसे वह किसी

तरह माफ नहीं कर पाता था ।

उधर कालीचरण नीचे की सीलन-भरी अंधेरी कोठरी में मैली चटाई पर बैठा, फटा बनियान पहने किताबों में आँख गड़ाए रहता । किसी तरह उसे छात्रवृत्ति प्राप्त करनी ही है ।

जब कलकत्ता आ रहा था तब मां ने अपने सिर की कसम दिलाकर उसे कहा था कि बड़े आदमियों के लड़कों का साथ कर आमोद-प्रमोद में न पड़ना । केवल मां के आदेश की रक्षा के लिए ही नहीं बल्कि अपने द्वारा अंगीकृत गरीबी की रक्षा के लिए भी उसका बड़े आदमियों के लड़कों से दूर रहना आवश्यक है । इसीलिए वह किसी दिन भी शैलेन के पास नहीं गया, यद्यपि वह जानता था कि शैलेन की अनुकूलता से उसकी कितनी ही समस्याएं बात की बात में हल हो सकती हैं । इतने पर भी बड़े से बड़े संकट में शैलेन की कृपा प्राप्त करने का लोभ उसे कभी नहीं हुआ । अपनी अकिंचनता के एकान्त अन्धकार में छिपा रहना उसे ज्यादा प्रिय था ।

किन्तु शैलेन उसकी यह अकड़ नहीं सह सका । खानपान, कपड़े-लत्ते और रहन-सहन में कालीचरण की दीनता इतनी प्रकट है कि आँखों को खटकती है । सीढ़ी पर चढ़ते समय कालीचरण के कपड़े-लत्ते तथा अन्य चीजों की ओर उनकी नजर जाती तो उसे अपने अपराधी होने का अनुभव होता । फिर कालीचरण के गले में कवच—तावीज—लटकता है, वह दोनों समय संध्या-पूजा करता है । शैलेन तथा उसके साथियों का दल उसके इस गंवारूपन की हंसी उड़ाता रहता है । अपनी खानपान पार्टी में एक दिन कृपा करके उन लोगों ने कालीचरण को बुलवाया पर कालीचरण ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि पार्टी का खाना-पीना उसे सख्त नहीं, न उसकी आदत ही वैसी है । उसकी अस्वीकृति से शैलेन और उसका दल और क्रुद्ध हो उठा ।

फलस्वरूप कुछ दिनों तक ऊपर के कमरे में ऐसा ऊबम-गाना-बजाना शुरू हुआ कि पढ़ाई में मन लगाना कालीचरण के लिए असंभव

हो गया। दिन में गोलदिग्घी के बगीचे में पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ता और सुबह बड़े तड़के, जब और लोग सोते रहते, उठकर पढ़ने लगता। खाने-पीने की तकलीफ, सीलन-भरी कोठरी में रहने और बहुत ज्यादा मेहनत करने के कारण कालीचरण को सिरदर्द की बीमारी हो गई। कभी-कभी तो कई-कई दिनों तक वह बिस्तर से उठ ही न पाता।

वह जानता था कि उसकी इस बीमारी की खबर पाने पर पिता उसे किसी तरह कलकत्ता में न रहने देंगे, बल्कि घबराकर खुद भी कलकत्ता दौड़ आ सकते हैं। उधर भवानीचरण का ख्याल था कि कलकत्ता में कालीचरण जितना सुखी है उसकी कल्पना भी गांववाले नहीं कर सकते। उनकी कल्पना थी कि गांव में अपने-आप पैदा होने-वाले पेड़-पौधों की तरह कलकत्ता की भूमि में हर तरह के आराम के साधन खुद ही पैदा होते रहते हैं और वहां सब निवासी यह सुख भोगते हैं। कालीचरण ने पिता की इस गलत कल्पना को सुधारने की कभी कोशिश नहीं की। बहुत ज्यादा कष्ट के समय भी वह पिता को बराबर पत्र लिखता रहा। परन्तु जब उसकी तकलीफ में शैलेन और उसके साथी ठीक उसके सिर पर ही ऊधम मचाने लगे तब उसका दुःख सीमा से बढ़ गया। फिर भी वह ज्यों-ज्यों गरीबी का अपमान और दुःख भोगने लगा त्यों-त्यों उसके मन में यह निश्चय दृढ़ होने लगा कि वह माता-पिता को इस दुःख से छुड़ाकर ही दम लेगा।

कालीचरण ने सबकी निगाह बचाकर चुपचाप अपनी पढ़ाई-लिखाई जारी रखने की कोशिश की पर उन लोगों के ऊधम में कोई कमी न आई, बल्कि उसे तंग करने की नई-नई तरकीबों की जाने लगीं। एक दिन उसने देखा कि उसके जूतों की जोड़ी का एक जूता गायब है और उसकी जगह एक नया जूता रखा है। दोनों पांवों में दो तरह के जूते पहनकर कालेज जाना संभव न था, इसलिए मोची से एक जोड़ी पुराने जूते खरीदने पड़े। एक दिन ऊपर के एक लड़के ने सहसा उसकी कोठरी में आकर पूछा, "आप क्या ऊपर से भूल-

कर मेरा सिगरेट-केस उठा लाए हैं ? कहीं दीख नहीं रहा है ।”

कालीचरण भुंक्कलाकर बोला, “मैं आप लोगों के कमरे में नहीं गया ।”

‘अरे ! यहीं तो पड़ा है’ कहते हुए आगे बढ़कर उस लड़के ने कोठरी के एक कोने से सिगरेट-केस उठा लिया और चला गया ।

इन बातों से ऊबकर कालीचरण ने निश्चय कर लिया था कि इस बार एफ० ए० की परीक्षा में भी छाववृत्ति मिल गई तो कहीं दूसरी जगह जाकर रहेगा ।

मेस में हर साल धूमधाम से सरस्वती-पूजा होती है । अधिकांश खर्च शैलेन देता है पर सभी कुछ न कुछ चन्दा देते हैं । पिछले साल, उपेक्षा की वृत्ति से कोई कालीचरण से चन्दा लेने नहीं आया पर इस साल उसे तंग करने के लिए लड़कों ने लाकर चन्दे का रजिस्टर उसके सामने रख दिया । आज तक कालीचरण ने इन लड़कों से कभी कोई सहायता नहीं ली थी, न उनके आमोद-प्रमोद में ही कभी शामिल हुआ था । पर जब लड़के उससे चन्दा मांगने आए तो उसने न जाने क्या सोचकर पांच रुपये का नोट निकालकर दे दिया । इतना चन्दा शैलेन को कभी किसी दूसरे लड़के से नहीं मिला था । कालीचरण को गरीब और कंजूस मानकर सब उसका तिरस्कार ही करते आए थे इसलिए आज उसका यह दान उनके लिए विलकुल असह्य हो गया । इस गरीबी में यह अकड़ ! क्या वह हमपर अपना रोव जमाना चाहता है !

कालीचरण दूसरे के घर खाता है । सदा समय पर खाना तैयार नहीं होता, फिर रसोइया और नाँकर ही उसके भाग्यविधाता हैं ; कितनी ही बार उसे बिना खाए ही रह जाना पड़ता है । इसीलिए नाशते के लिए उसे कुछ रकम अपने पास रखनी पड़ती है । आज उसकी यह पूंजी भी सरस्वती देवी के चरणों में समर्पित हो गई ।

कालीचरण की सिरदर्द की बीमारी बढ़ती ही गई । परीक्षा में फेल तो नहीं हुआ पर छाववृत्ति नहीं मिली । फलतः खर्च को पूरा

करने के लिए एक ट्यूशन और करने को विवश हुआ तथा सब उपद्रवों के बावजूद इस कोठरी को न छोड़ सका ।

ऊपर के लड़कों ने समझा था कि अब कालीचरण यहां न आएगा परन्तु उनकी आशा पूरी नहीं हुई । मामूली धोती और वही चायना-कोट पहने कालीचरण ने कोठरी में प्रवेश किया और मैले कपड़े में बंधी गठरी तथा टीन का बक्स कुली के सिर से उतरवाकर रखवा लिया । उस गठरी में मां द्वारा स्नेह से बेटे को दिया हुआ अचार, अमावट इत्यादि तरह-तरह की चीजें थीं । कालीचरण जानता था कि उसकी अनुपस्थिति में ऊपर के लड़के उत्सुकतावश उसकी कोठरी में आते रहते हैं । मां-बाप की दी प्रेम की भेंट उनके हाथ पकड़कर अपमानित हो, यह वह नहीं चाहता था । वे चीजें उसके लिए अमृत हैं और उनका महत्त्व गांव के गरीब लोग ही जान सकते हैं, शहर के तिकड़मी छात्र उनका मूल्य क्या समझें ! फिर वे चीजें जिन पात्रों में रखी हैं उनकी अवज्ञा ये लड़के जरूर करेंगे जो उसके लिए असह्य होगा । इसलिए उसने कोठरी में ताला लगाना उचित समझा । जब कहीं जाता तो ताला बन्द करके ही जाता ।

उसकी यह नई बात लड़कों को और खटकी । शैलेन ने हंसी उड़ाई । एक दिन उसने साथियों से कहा, “यार ! बात क्या है ? कहां का खजाना लाया है कि घड़ी-घड़ी ताला बन्द करता है । कोई, पता तो लगाओ ।” सभीने उत्सुकता प्रकट की ।

कालीचरण का ताला मामूली था और अन्य चावियों से खुल सकता था । एक दिन शाम को जब कालीचरण ट्यूशन पर चला गया तो ताला खोलकर दो-तीन लड़के उत्सुकतावश उसके कमरे में लालटेन लेकर घुस गए । सब चीजें उलट-पुलटकर देखीं । खोजते-खोजते तकिये के नीचे एक चाबी दिखाई पड़ी । उससे टीन का सन्दूक खोला गया । पर उनमें भी मैले कपड़े, कापियां, कैंची इत्यादि मामूली सामान मिला । सन्दूक बन्द करके चलने की बात सोच ही रहे थे कि बक्स के नीचे रूमाल में बंधी हुई कोई चीज दिखाई पड़ी । खोलने

पर उसमें एक पुड़िया निकली और जब पुड़िया खोली गई तो उसमें से पचास रुपये का एक नोट निकल आया ।

अब तो सभी अट्टहास कर उठे । समझ गए कि इसीके लिए वह बार-बार ताला बन्द करता है । उसकी कंजूसी और सन्देह-भरी प्रकृति पर शैलेन चकित हो गया ।

इतने में कालीचरण की आहट-सी लगी । भट सन्दूक बन्द कर और जल्दी से दरवाजे में ताला लगा सब चलते बने । नोट लेते गए । शैलेन नोट को देखकर खूब हंसा । उसके लिए पचास रुपये कुछ न थे, पर कालीचरण के पास इतने रुपये हो सकने का किसीको विश्वास न था । अब सब यह जानने को उत्सुक हो उठे कि देखें, इस चोरी का जान होने पर कालीचरण क्या करता है ।

कालीचरण ट्यूशन से थका हुआ, रात को नी बजे घर लौटा तो उसमें इतनी ताकत न थी कि कमरे की चीजों को ध्यान से देखता । सिर में भयंकर दर्द हो रहा था जिससे वह बड़ा परेशान था और अनुभव करता था कि यह दर्द कुछ दिन तक चलेगा ।

दूसरे दिन कपड़े निकालने के लिए जब कालीचरण ने बक्स को हाथ लगाया तो देखा कि वह खुला है । उसने समझ लिया कि फदा-चित् वह ताला बन्द करना भूल गया होगा । क्योंकि अगर चोर घुसता तो बाहर का ताला ज्यों का त्यों कैसे रहता ।

पर सन्दूक खोलकर देखा तो सब सामान अस्तव्यस्त मिला । एकाएक उसका दिल कांप उठा । रुमाल की खोज की तो देखा कि सां का दिया हुआ वह नोट गायब है । बार-बार एक-एक कपड़े को भटकारा, हर चीज को हटा-हटाकर देखा परन्तु नोट नहीं मिला । उधर ऊपरवाले लड़के सीढ़ी पर उतरने-चढ़ने के वहाने बार-बार उधर से गुजरते और कोठरी की तरफ एक नजर डालते जाते । फिर कालीचरण की दुरयस्या का रोचक वर्णन नुमाकर शैलेन को मुसकारते । अट्टहास का फव्वारा भी चलता रहता ।

जब कालीचरण को नोट कहीं प्राप्त नहीं हुआ और शैलेन-दर्द

इतना बढ़ गया कि चीजों को उठाना-धरना भी असंभव हो गया तब वह विछीने पर आकर मुर्दा-सा पड़ रहा । उसकी मां ने न जाने किस-किस तरह और कितने कष्ट उठाकर ये रुपये एकत्र किए होंगे । पहले उसे भी अपनी मां के दुःख का इतिहास नहीं मालूम था और तब वह मां के बोझ को बढ़ाता ही रहता था किन्तु जिस दिन मां ने अपने दुःख में उसे साथी बनाया उस दिन जैसा गर्व उनने कभी अनुभव नहीं किया । अपने जीवन में सब से बड़ा संदेश और आशीर्वाद उसे इसी नोट के रूप में मिला था पर अपनी मां के अथाह स्नेह-समुद्र के मंथन से मिला दुःख का वह अमूल्य उपहार आज चोरी चला गया । उसे लगा कि यह उसके प्रति कोई पैशाचिक अभिशाप है । कोठरी के पास ऊपरवाले लड़कों के आने-जाने की पैरों की धमक सुनाई पड़ रही है । बार-बार और वेमत्तलव उन लोगों का उतरना-चढ़ना बन्द ही नहीं होता है । ऐसा लगता है जैसे गांव में एक ओर तो आग लगी हो, उसमें सब कुछ भस्म हुआ जा रहा हो और दूसरी ओर उसके पास से कल-कल ध्वनि करती नदी बही चली जा रही हो ।

सहसा ऊपर की मंजिल से लड़कों का घट्टहास उसके कान में आया और उसे लगा कि यह चोर का काम नहीं है, हो न हो यही लोग उसे चिढ़ाने और तंग करने के लिए नोट उड़ा ले गए हैं । चोर चुरा ले जाता तो कदाचित् उसे इतना दुःख न होता । ऐसा जान पड़ा कि जैसे धनगर्वित इन लड़कों ने खुद उसकी मां पर ही प्रहार किया है । इतने दिनों से वह यहां रह रहा है पर कभी ऊपर नहीं गया किन्तु आज जब उसके शरीर पर फटी वनियान है, पैरों में जूते नहीं हैं, मन की उत्तेजना और सिरदर्द से मुंह लाल हो रहा है तब वह उसी हालत में उठकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां लांघता हुआ ऊपर जा पहुंचा ।

आज रविवार है । कालेज जाने की तड़फड़ नहीं । इसलिए सब बाहर बरामदे में बैठे गप-शप कर रहे थे । कालीचरण हांफता हुआ वहां पहुंचा और क्रोध-कम्पित कण्ठ से बोला, "मेरा नोट दे दीजिए !"

यदि वह प्रार्थना के स्वर में नम्रतापूर्वक यह बात कहता तो संभव

है उसका अच्छा परिणाम होता किन्तु उसकी उन्मत्त मूर्ति देखकर शैलेन तेज हो पड़ा। यदि दरवान वहां होता तो उसके द्वारा इस असम्ब को वह कान पकड़कर निकलवा देता। शैलेन का रुख देखकर सब एकसाथ बोले, “क्या कहा आपने ? कैसा नोट ?”

कालीचरण बोला, “मेरे सन्दूक से आप लोग नोट ले आए हैं।”

“छोटे मुंह बड़ी बात ! हमें चोर बना रहा है ?”

कालीचरण के हाथ में अगर कोई चीज होती तो वह खून कर बैठता। उसका रंग-ढंग देख चार-पांच ने मिलकर उसे पकड़ लिया। इस अन्याय को दूर करने की कोई शक्ति उसके पास नहीं। जो सुनेगा उसीको उद्‌ण्ड और संशय बटाएगा। जिन लोगों ने उसे मृत्यु-वाण मारा था वे उसकी उद्‌ण्डता को प्रसह्य कह मोर-गुल मचाने लगे।

किसीको पता नहीं कि कालीचरण की वह रात किस प्रकार बीती। शैलेन ने सौ रुपये का एक नोट निकालकर कहा, “जाम्रो, उस गंवार को दे आओ।”

“वाह ! यह भी खूब रही ! पहले जरा उसका तेज तो कम होने दो। पहले वह हम लोगों से लिखित क्षमा मांगे तब फिर देखेंगे।”

अन्त में सब सोने चले गए।

दूसरे दिन सुबह तक कालीचरण की बात लोग भूल गए। पर सोही से उतरते हुए किसीने नीचे की कोठरी में सुना कि कोई बात-चीत कर रहा है। सोचा, ‘शायद बकीब से सलाह कर रहा होगा।’ दरवाजा अन्दर से बन्द था। कान लगाकर सुना, ‘अरे वह तो बकीब से सलाह नहीं हो रही है, वह असम्बद्ध प्रलाप कर रहा है !’

उसने ऊपर जाकर शैलेन को बताया। शैलेन उतरकर दरवाजे पर आया। सुना, कालीचरण न जाने क्या-क्या बक रहा है, और रह-रहकर ‘बापू, बापू’ चिल्ला उठता है।

शैलेन डरा कि कहीं नोट के शोक में वह पागल तो नहीं हो गया। बाहर से कई बार पुकार लगाई गई परन्तु कोई जवाब न मिला। हां, चढ़बड़ाहट सुनाई देने लगी। शैलेन ने जोर से पुकार

वातू, दरवाजा खोलिए, आपका नोट मिल गया है !”

किन्तु दरवाजा नहीं खुला ; बड़बड़ाहट जारी रही ।

शैलेन ने कभी सोचा भी न था कि मामला इतना तूल पकड़ लेगा । साथियों से कुछ न कह सका परन्तु मन ही मन घोर पश्चात्ताप होने लगा । बोला, “दरवाजा तोड़ो ।” एकाध ने कहा, “दरवाजा ही तोड़ना है तो पुलिस को बुलाकर तोड़ना चाहिए । पागल हो गया है ; न जाने क्या कर बैठे !”

शैलेन बोला, “नहीं-नहीं, जल्दी जाकर अपने डाक्टर को बुला लाओ ।”

डाक्टर पास रहते थे, जल्दी ही आ गए । दरवाजे में कान लगाकर सुना और बोले, “यह तो वायी में बक रहा है ।” दरवाजा तोड़ा गया ; लोग भीतर गए तो देखा कि कालीचरण ज़मीन पर बेहोश पड़ा है, आंखें खुली हैं और लाल हो रही हैं, हाथ-पांव पटकता है और न जाने क्या-क्या बकता है ।

डाक्टर ने अच्छी तरह परीक्षा करने के बाद शैलेन से पूछा, “इसके घर का कोई है यहां ?”

शैलेन का चेहरा फक हो गया, उसने सहमकर पूछा, “क्यों, क्या बात है ?”

डाक्टर गम्भीर होकर बोला, “हालत अच्छी नहीं है, खबर दे देना अच्छा होगा ।”

शैलेन ने कहा, “इनसे हमारी कोई घनिष्ठता नहीं है । यह भी नहीं मालूम कि घर के लोग कहां रहते हैं । पता लगाऊंगा, परन्तु अभी तुरन्त क्या करना चाहिए ?”

डाक्टर ने कहा, “तुरन्त किसी खुले कमरे में ले चलना चाहिए और निरन्तर देख-रेख के लिए नर्स का प्रबन्ध होना चाहिए ।”

शैलेन कालीचरण को अपने कमरे में ले गया, फिर सबको यह कहकर विदा कर दिया कि भीड़ करना ठीक नहीं । लोगों के हट जाने पर उसके सिर पर आइसबैग रखा और स्वयं अपने हाथ से हवा करने

कालीचरण के घरवालों का पता लगाने के लिए फिर उसका खोलना पड़ा। उसमें चिट्ठियों के दो बण्डल रहे मिले। एक की, दूसरे में पिता की चिट्ठियां थीं। इन्हें शैलेन उठा लाया, दरवाजा बन्द कर दिया और रोगी के बैठकर पढ़ने लगा। चिट्ठियों से उसके घर का पता मालूम ही वह चौंक पड़ा। ज्ञानवाड़ी, चौघरियों की हवेली, भवानीचरण धरी !

उसने चिट्ठियां रख दीं और एकटक कुछ देर कालीचरण के मुंह की ओर देखता रह गया। कुछ दिन पहले किसी साथी ने उसने कहा था, "तुम्हारे मुंह से कालीचरण का मुंह मिलता है।" उस समय यह बात उसे अच्छी नहीं लगी थी किन्तु आज उसने समझ लिया कि बात निरावार नहीं थी। उसे ज्ञात था कि उसके बाबा दो भाई थे—श्यामाचरण और भवानीचरण। भवानीचरण के कोई लड़का कालीचरण है, यह उसे नहीं मालूम था। तो यह कालीचरण उसका काका है !

तब शैलेन्द्र को पुरानी बातें याद आने लगीं। जब उसकी दादा जीवित थीं तो बड़े स्नेहपूर्वक भवानीचरण की बातें किया करती थी; बात करते-करते उनकी आंखों में आंसू आ जाते थे। यद्यपि भवानीचरण उनके देवर लगते थे परन्तु उम्र में लड़के से भी छोटा होने के कारण उन्होंने उन्हें अपने बच्चे की तरह ही पाला-पोसा था। जायदाद के भगड़े के कारण जब परिवार के दो टुकड़े हो गए तब भी भवानीचरण का हाल-चाल जानने के लिए उनका हृदय प्यासा रहता था। वे अपने लड़कों से कहती थीं, "बेचारा भवानी बिलकुल मौन है, तुम लोगों ने उसे जहर ठगा होगा। मेरे समुद्र उसपर जा देते थे, इसलिए उसको इस हालत में छोड़ गए होंगे, इसपर मैं विद्वानों के कारण वह भी दादी पर कई बार क्रुद्ध हुं।"

चरण की आज ऐसी दशा है। कालीचरण की हालत देखकर सब कुछ उसकी समझ में आ गया। इतने प्रलोभन देने पर भी कालीचरण उसकी मण्डली में शामिल नहीं हुआ, इसपर पहले उसे खीझ होती थी, आज गौरव का अनुभव हुआ। कहीं कालीचरण ने वैसा किया होता तो आज उसे कितना लज्जित होना पड़ता।

शैलेन की मण्डली बराबर कालीचरण को सताती और उसका निरस्कार करती रही है इसलिए शैलेन अपने काका को वहां नहीं रख सका। डाक्टर की सलाह से एक अच्छा मकान लेकर उसमें रखा और बाबा को भी खबर कर दी।

शैलेन का पत्र पाते ही भवानीचरण कलकत्ता दौड़े आए। आते समय रासमणि ने बचा-बचाया सब धन पति को सौंपते हुए कहा, “देखना, किसी तरह की त्रुटि न हो। ज्यादा गड़बड़ देखना तो मुझे तुरन्त खबर देना, मैं भी आ जाऊंगी।” हाथ जोड़कर रक्षाकाली की पूजा मानी और गृहाचार्य को बुलाकर शान्तिपाठ आरम्भ करा दिया।

कालीचरण की दशा देखकर भवानीचरण सकते में आ गए। अभी तक उसे पूरा होश नहीं हुआ था। उसने उन्हें ‘मास्टर साहब’ कहकर पुकारा जिससे उनकी छाती फटने लगी। बीच-बीच में ‘वापू, वापू’ भी पुकार उठता, तब भवानीचरण उसका हाथ पकड़ मुंह के पास करके कहते, “बेटा, मैं तेरे पास ही तो बैठा हूँ!” किन्तु बेटा बाप को पहचानने में असमर्थ ही रहता।

डाक्टर ने आकर देखा और बताया कि ज्वर कुछ कम है, अब शायद तबियत में कुछ सुधार होगा। भवानीचरण इस बात की कल्पना ही न कर सकते थे कि कालीचरण स्वस्थ न होगा। उसके जन्म से ही वे मानते आए हैं कि बड़ा होकर वह हमारे वंश का उद्धार करेगा। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था कि कालीचरण का अस्तित्व कोई मिटा नहीं सकता। इसीलिए डाक्टर थोड़ा अच्छा बताता तो उन्हें उसमें ‘बहुत अच्छा’ की ध्वनि सुनाई पड़ती और रासमणि को लिखे उनके

पत्रों में किसी प्रकार की आशंका की कोई बात न होती ।

शैलेन्द्र के शिष्ट व्यवहार से भवानीचरण को आश्चर्य होता था । वह उनका अत्यन्त अपना-सा हो गया था । कलकत्ता का सम्य लड़का है पर उनपर कितनी श्रद्धा दिखाता है ! सोचा, 'यहां के लड़कों का स्वभाव ही शायद ऐसा होता होगा ।' मन में कहते, 'इनमें शिष्टता न होगी तो किनमें होगी ! गांव के लड़कों से, जिनमें न शिक्षा है, न सम्यता, इनकी क्या तुलना की जा सकती है !'

अब कालीचरण का ज्वर कुछ-कुछ घटने लगा था । कभी-कभी कुछ होश भी आ जाता । पिता को चारपाई के पास देख वह चौंका । सोचा, 'मैं कलकत्ता में कैसे गुजर करता रहा हूं, अब यह सब इनसे कैसे छिपा रहेगा ?' उसे सबसे ज्यादा चिन्ता यह होने लगी कि ये लड़के कहीं पिता का उपहास न कर बैठें । उसने इधर-उधर देखा और समझ न पाया कि वह कहां लेटा है । उसे मालूम पड़ा, जैसे वह सपना देख रहा है ।

ज्यादा सोचने-विचारने की शक्ति उसमें अभी न आई थी । दिमाग पर बहुत जोर देकर उसने सोचा कि हो न हो, उसकी बीमारी की खबर सुनकर पिता कलकत्ता दौड़ आए हैं और गन्दी जगह से यहां लाकर रखा है । कैसे लाए, रुपये कहां से जुटाए होंगे और वाद में कर्ज कैसे चुकेगा, ये सब बातें सोचने में वह असमर्थ था । हां, एक बात अवश्य सोचता था कि चाहे जैसे उसे जिन्दा रहना है ।

उस समय भवानीचरण कमरे में नहीं थे । शैलेन्द्र एक तश्तरी में थोड़े फल लिए कालीचरण के पास आया और तश्तरी को टेबल पर रखकर प्रणाम किया, फिर बोला, "मुझसे बड़ा अपराध हुआ है, क्षमा कर दीजिए ।"

कालीचरण पहले तो धवराया परन्तु शैलेन्द्र के मुख का भाव देखकर समझ गया कि इसमें कोई कपट की बात नहीं है । पहले-पहल जब उसने मेस में शैलेन्द्र के यौवनोद्दीप्त गौर मुख को देखा था तब उसका मन उसकी ओर खिंचा था किन्तु अपनी दीनता की लज्जा के

उसके पास नहीं गया । यदि उसकी हैसियत भी शैलेन जैसी होती तो मित्र के रूप में उसे पाकर प्रसन्नता ही होती । किन्तु इतने निकट रहकर भी बीच की दीवार को लांघने का कोई उपाय न था । परन्तु आज जब शैलेन फलों की तरतरी लिए उसकी शय्या के पास आ खड़ा हुआ तब गहरी सांस लेकर उसने उसके सुन्दर मुखड़े की ओर देखा । क्षमा के शब्द तो उसके मुँह से नहीं निकले परन्तु धीरे-धीरे फल उठाकर खाने लगा, मानो जो कुछ कहना था इसी रूप में कह दिया ।

वह प्रतिदिन आश्चर्यपूर्वक देखता कि उसके पिता के साथ शैलेन की बड़ी घनिष्ठता हो गई है और शैलेन उन्हें बाबा कहता है । उसने दादी के हाथ की बनी अमावट, अचार इत्यादि चुराकर खाने की बात भी कह सुनाई । शैलेन की इस स्वीकृति से कालीचरण पुलकित हो गया । यदि संसार कद्र करे तो वह अपनी मां के हाथ की चीजें सबको बुलाकर खिला सकता है । वह रोग-शय्या कालीचरण के लिए आनन्द-गोष्ठी-सी हो गई, ऐसे सुख के क्षण उसके जीवन में शायद ही कभी आए होंगे । यह सोचता, 'यदि मां यहां उपस्थित होतीं तो वह इस कौतुकी युवक को कितना प्यार करतीं !'

केवल एक बात ऐसी थी जिसकी चर्चा इस आनन्द के प्रवाह में कभी-कभी बाधक हो उठती थी । कालीचरण के मन में अपनी गरीबी के लिए एक अभिमान था । इस बात का गर्व करने में उसे शर्म आती थी कि कभी उसका घराना ऐश्वर्यवान था । 'हम गरीब हैं' इस बात को वह किसी भी किन्तु-परन्तु से ढकने को तैयार नहीं है । उधर भवानीचरण जब उन दिनों का जिक्र करते तो घूम-फिरकर उसमें बसीयतनामे की बात आ ही जाती और वे इस विश्वासघात पर उत्तेजित हो उठते । इससे मन ही मन कालीचरण चंचल हो उठता था । वह समझता था कि यह सब महज मेरे पिता का पागलपन है । उसने और उसकी मां ने उनके इस पागलपन को सहन किया है परन्तु शैलेन के सामने पिता की यह दुर्बलता प्रकट हो, इसे वह पसन्द नहीं करता । कितनी ही बार उसने पिता को समझाया है कि यह सब उनका झूठा

सन्देह है परन्तु जब-जब ऐसा किया है पिता पर उलटा प्रभाव पड़ा है। ऐसे समय वे और भी ज्यादा जोर से अपने पक्ष की पुष्टि करते और उन्हें रोकना कठिन हो जाता।

कालीचरण इसलिए भी चिन्तित था कि यह चर्चा शैलेन को अप्रिय थी। कालीचरण स्वयं उत्तेजित होकर पिता की युक्तियों का खण्डन करता परन्तु यह एक ऐसा विषय था कि उसमें वे किसीसे हार मानने को तैयार नहीं थे। उनकी मां शिक्षिता थीं; उन्होंने स्वयं वसीयतनामा सन्दूक में रखा था परन्तु वहां से वह गायब हो गया। यह चोरी नहीं तो और क्या है? तब उत्तेजित पिता को शान्त करने के लिए कालीचरण कहता, “मान लो ऐसा हुआ तो भी कहीं बाहर तो गया नहीं। जो तुम्हारी सम्पत्ति का उपभोग कर रहे हैं वे भी तो तुम्हारे ही बच्चे, तुम्हारे ही भतीजे हैं। सारी सम्पत्ति कहीं घर में ही तो है।” शैलेन इन बातों को सहन न करने के कारण ऐसे समय उठकर चला जाता। इससे कालीचरण का दुःख बढ़ जाता।

वह सोचता, ‘शैलेन पिता को अर्थ-लोलुप समझता होगा।’

शैलेन के मन में कई बार आया कि वह कालीचरण और भवानी-चरण को अपना परिचय दे दे परन्तु वसीयतनामे की चोरी की चर्चा के कारण वह हर बार रुक गया। यह विश्वास करने को वह किसी प्रकार तैयार नहीं कि उसके बाप-दादों ने वसीयतनामा चुराया है। परन्तु इतना वह जरूर समझ गया था कि भवानीचरण को उनकी पंक्ति सम्पत्ति से वंचित करने में अवश्य किसीका हाथ है।

शाम को कालीचरण की तबीयत कुछ भारी हो जाती है; सिर में पीड़ा और शरीर में हारत बढ़ जाती है परन्तु इसपर वह व्यान ही नहीं देता, उलटे उसका मन पढ़ाई के लिए व्याकुल हो उठता है। एक बार छात्रवृत्ति नहीं पा सका तो प्रागे फिर वैसा नहीं होना चाहिए। शैलेन से छिपाकर उसने पढ़ाई शुरू कर दी, यद्यपि डाक्टर ने पढ़ना बिलकुल मना कर रखा था।

पिता से कहा, “बापूजी, अब तुम घर जाओ, मां अकेली घबराती

होगी । मैं तो ठीक हो गया, अब कोई चिन्ता की बात नहीं है।”

शैलेन ने भी कहा, “हां, अब जाने में कोई बात नहीं । थोड़ी दुर्बलता जरूर है, पर वह भी धीरे-धीरे ठीक हो जाएगी । फिर हम लोग तो हैं ही ।”

दूसरे दिन सुबह भवानीचरण सामान बांधकर गांव जाने को तैयार हुए । कालीचरण के पास जाकर देखा कि उसकी आंखें लाल हो रही हैं और देह तवा-सी जल रही है । कल आधी रात तक वह ‘लाजिक’ की किताब पढ़ता रहा, फिर नींद ही न आई और रात करवट बदल-बदलकर बड़ी बेचैनी में बीती ।

कालीचरण अब भी बड़ा दुर्बल था । इसलिए बीमारी के दोहरा देने पर डाक्टर बड़े चिन्तित हो उठे । अलग लेजाकर शैलेन से कहा, “इस बार तो स्थिति बड़ी खतरनाक जान पड़ती है ।”

शैलेन ने भवानीचरण से कहा, “बाबा ! तुम्हें भी कष्ट है और रोगी की भी ठीक देख-रेख नहीं हो पा रही है इसलिए दादीजी की भी यहीं बुला लेना ठीक होगा ।”

शैलेन की बात से भवानीचरण का दिल बैठ गया । मारे भय और शंका के हृदय जोर से घड़कने लगा और सारा शरीर कांपने लगा । इतना ही बोल सके, “जो उचित हो करो ।”

रासमणि को ज्योंही खबर मिली वे बगलाचरण के साथ कलकत्ता रवाना हो गईं । संध्या को वे कलकत्ता पहुंची पर वेटा उनके पहुंचने के चंद्र घण्टे बाद ही सब खेल खत्म करके चला गया । बेहोशी में वह ‘मां, मां’ पुकारता रहा, उसकी वह पुकार मां की छाती में सदा के लिए विधी रह गई । परन्तु इस भय से कि वेटे के बिना भवानीचरण कैसे जीवित रहेंगे, उन्होंने अपने दुःख-शोक को प्रकट नहीं होने दिया । उनका पुत्र मानो आकर उनके पति में ही सम गया है, यह समझकर उन्होंने पति की एकान्त सेवा का बोझ अपने गहरी चोट खाए हृदय पर उठा लिया । प्राणों ने कहा, ‘अब नहीं सहा जाता !’ फिर भी उन्हें सहना पड़ा ।

रात काफी बीत चुकी थी। गहरे शोक से चूर होकर रासमणि को कुछ देर के लिए तंद्रा-सी आ गई थी परन्तु भवानीचरण को किसी तरह नींद न आई। कुछ देर तक करवटें लेते रहे परन्तु अन्त में एक गहरी सांस लेकर 'दयामय भगवान' कहते उठ गए। गांव की पाठशाला में पढ़ने के दिनों में कालीचरण कोनेवाले कमरे में पढ़ा करता था, भवानीचरण अपने कम्पित कर में दीपक लिए वहीं गए। रासमणि की बनाई गद्दी तख्त पर विछी है और उसपर जगह-जगह स्याही के दाग पड़े हुए हैं; धुंधली दीवार पर कोयले से खिंची ज्यामिति की रेखाएं वैसी ही हैं और तख्त के एक तरफ वादामी कापियों के साथ रायल रीडर के कुछ फटे-फुटे पृष्ठ भी पड़े हुए हैं। उसके वचपन के नन्हे पांव की एक चप्पल घर के एक कोने में पड़ी हुई है। सदा की उपेक्षित वह एक चप्पल ही आज संसार की एक बड़ी से बड़ी न्यामत के रूप में दिखाई पड़ी।

टीन के सन्दूक पर दीपक रख भवानीचरण उसी तख्ते पर बैठ गए। सूखी आंखों में आंसू तो न आए पर छाती के भीतर न जाने कैसा होने लगा कि सांस लेने में उनकी पसलियां फटने लगीं। बैठा नहीं रहा गया तो पूर्व ओर की खिड़की खोलकर उसकी एक छड़ को पकड़े अंधेरे में बाहर की ओर देखने लगे।

अंधेरी रात, रिमभिम पानी बरस रहा है। सामने ही चार-दीवारी से घिरा घना उपवन है। पढ़ने के कमरे के सामने ही कालीचरण ने थोड़ी जमीन खोद-खादकर बगीचा लगाने की चेष्टा की थी। अब भी उसके हाथ की एक बेल खूब फूल रही है और उसपर अगणित फूल खिल रहे हैं।

उस बच्चे के इस बगीचे को देखते ही भवानीचरण के प्राण कण्ठ तक आ गए। अब उनके जीवन में कोई आशा नहीं। पूजा की छुट्टियां अब भी आएंगी परन्तु जिसके बिना उनका अकिंचन गृह सूना हो गया है, वह अब कभी न आएगा, किसी छुट्टी में घर न लौटेगा।

'हाय, मेरे बच्चे !' कहकर और सिर पकड़कर वे वहीं जमीन पर बैठ गए। कालीचरण माता-पिता की गरीबी दूर करने कलकत्ता गया था पर हाय री किस्मत, उन्हें इस संसार में विलकुल गरीब और बेवस छोड़कर चला गया !

बाहर वर्षा और जोर से होने लगी।

इसी समय अंधेरे में कुछ खुरखुराहट हुई, किसीके पैरों की ध्वनि आई। भवानीचरण का हृदय घड़कने लगा। किसी रूप में भी जिसका आशा नहीं की जा सकती, उसकी ही आशा उठ रही है। ऐसा लग मानो कालीचरण अपना बगीचा देखने आया हो। 'इतनी वर्षा में वह भीग जाएगा।' मन की इस बेकली के बीच उन्होंने देखा कि क्षण-भर के लिए कोई खिड़की के सामने आकर खड़ा हो गया है। शरीर सफेद चट्टर से ढका है, अंधेरे में मुँह ठीक दिखाई नहीं देता। पर कद से कालीचरण ही लगता है।

भवानीचरण 'आ गया वेटा !' कहते हुए झपटकर दरवाजे के ओर बढ़े और दरवाजा खोलकर वहाँ पहुंच गए। पर देखा, वहाँ कोई नहीं है। सारे बगीचे को छान आए पर कहीं कोई नहीं मिला। गहरा रात के गहरे अंधेरे में उन्होंने रुँधे गले से पुकारा, "वेटा कालीचरण !"

पर कोई उत्तर नहीं मिला। हां, उनकी पुकार सुनकर नटवनीकर दौड़ता आया और उन्हें पकड़कर अन्दर ले गया।

दूसरे दिन सुबह जब नटवर उस कमरे में झाड़ू लगाने गया तब देखा कि खिड़की के सामने एक पोटली पड़ी है। लेजाकर भवानीचरण को दी। भवानीचरण ने खोलकर देखा कि कुछ पुराने कागज़ हैं चश्मा लगाकर पढ़ते ही दौड़कर रासमणि के पास पहुंचे।

उनके हाथ से कागज़ लेकर रासमणि ने पूछा, "क्या है ?"

भवानीचरण बोले, "वही पुराना वसीयतनामा !"

रासमणि ने पूछा, "किसने दिया ?"

भवानीचरण ने कहा, "कल रात में कालीचरण आया था, वह दे गया है।"

रासमणि ने कहा, “अब इसका क्या होगा ?”

भवानीचरण बोले, “हां, अब तो कोई आवश्यकता नहीं।” और पत्नी के हाथ से लेकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

गांव में खबर फैल गई। बगलाचरण ने गर्व से सिर ऊंचा करके कहा, “देखा, मैंने पहले ही कह दिया था कि वसीयतनामे का उद्धार कालीचरण के ही हाथों होगा !”

मोदी रामचरण बोला, “लेकिन कल रात की गाड़ी से एक गौरा लड़का आया था, उसने मेरी दुकान पर आकर मुझसे चौधरी-वाड़ी का पता पूछा था ; मैंने रास्ता बता दिया था। उसके हाथ में कपड़े से बंधी एक पोटली थी।”

“फिजूल बकता है !” कहकर बगलाचरण ने उसकी बात उड़ा दी।

○ ○ ○

कहानी

पंचतन्त्र पतिता रहस्य की कहानियां काबुलीवाला बंगला की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	उर्दू की सर्वश्रेष्ठ कहानियां संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां घोसला एक पुरुष : एक नारी मंभली दीदी : बड़ी दीदी
--	---

काव्य : शायरी

मेघदूत गीतांजलि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत जिगर की शायरी	दीवान-ए-गालिव उमर खैयाम की रूबाइयां गाता जाए वंजारा आज की उर्दू शायरी
---	--

जीवनोपयोगी

सफल कैसे हों जैसा चाहो वैसा बनो	प्रभावशाली व्यक्तित्व सफलता के आठ साधन
------------------------------------	---

विविध

शकुन्तला घूँघट में गोरी जले गांधीजी की सूक्तियां पत्र लिखने की कला वर्थ कंट्रोल योगासन और स्वास्थ्य डाक्टर के आने से पहले	ठीक खाओ, स्वस्थ रहो आपका शरीर हस्त-रेखाएं अमर वाणी बिन बुलाए मेहमान शादी या ढकोसला हास-परिहास
---	---

प्रत्येक का मूल्य एक रुपया

